महाबोधि-ग्रन्थ-माला—६ पुष्प

उदान

[मूल पाली का हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप, एम्० ए०

बुद्धाब्द २४८२

विक्रमाब्द १९९५

प्रथम संस्करण
१००० प्रतियाँ

मूल्य १)

उदान

भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए०

प्रकाशक

महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस

प्रकाशक
ब्रह्मचारी देवप्रिय, बी० ए०
प्रधान मंत्री
महाबोधि सभा, ऋषिपतन,
सारनाथ (बनारस)

मुद्रक
एम० पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी-पाठकों के सम्मुख, आज महाबोधि ग्रन्थ-माला के छठे पुष्प के रूप में, 'उदान' के हिन्दी अनुवाद को उपस्थित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इन ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ जिन साहित्य-प्रेमी, तथा धर्मानुरागी दाताओं ने सहायता की है, हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं। किंतु अभी भी अर्थाभाव के कारण हम लोगों का प्रकाशन-कार्य बहुत पिछड़ा हुआ है। त्रिपिटक ग्रन्थों के रत्न 'संयुक्त-निकाय' हिन्दी में अनूदित होकर काफ़ी समय से पड़ा है। उसके प्रकाशित हो जाने से बौद्ध-धर्म विषयक हिन्दी-साहित्य काफ़ी धनी हो जायगा। आशा है, दानी महानुभाव आर्थिक सहायता देकर हमें इस प्रकाशन-कार्य में उत्साहित करेंगे।

निम्न लिखित सज्जनों ने, 'दीघ-निकाय' के प्रकाशित हो जाने के बाद, चन्दा इकट्ठा करके जो सहायता भेजी है, हम उसके लिए उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

श्री Teoh khay cheong ११०)
श्री० ये० जयसिंह १००)

७—७—३८

विनम्र
ब्रह्मचारी देवप्रिय
प्रधान मंत्री, महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

प्राक्कथन

भावातिरेक से कभी कभी जो सन्तों के मुँह से प्रीति-वाक्य निकला करता है, उसे 'उदान' कहते हैं। इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के ऐसे ही उदान-वाक्यों का संग्रह है। भव-बन्धन से मुक्त अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के यह उदान बड़े ही हृदय-ग्राही तथा मर्मस्पर्शी हैं। उदान-वाक्यों के पहले उन कथाओं तथा घटनाओं का उल्लेख आता है, जिस अवसर पर ये वाक्य कहे गए थे। इस से उदानों का अर्थ बड़ा स्पष्ट और सरल हो जाता है। इन उदानों में बौद्ध-दर्शन के सभी अंगों पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

'उदान' का त्रिपिटक में क्या स्थान है, यह निम्न तालिका से प्रगट हो जायगा—

१. सूत्र-पिटक

(१)	दीघ–निकाय	३४ सूत्र
(२)	मज्झिम–निकाय	१५२ ,,
(३)	संयुक्त-निकाय	५६ ,,
(४)	अंगुत्तर–निकाय	११ निपात
(५)	खुद्दक–निकाय	१५ ग्रंथ

खुद्दक-निकाय के १५ ग्रंथ ये हैं—

१. खुद्दक पाठ	२. धम्म पद	३. **उदान**
४. इतिवुत्तक	५. सुत्तनिपात	६. विमान-वत्थु

७. पेत-वत्थु	८. थेर-गाथा	९. थेरी-गाथा
१०. जातक	११. निद्देस	१२. पटिसम्भिदा मग्ग
१३. अपदान	१४. बुद्ध वंस	१५. चरियापिटक

२. विनय-पिटक

(१) पाराजिक	(२) पाचित्तिय
(३) महावग्ग	(४) चुल्लवग्ग
(५) परिवार	

३. अभिधर्म-पिटक

(१) धम्मसंगनी	(२) विभंग
(३) धातुकथा	(४) पुग्गलपञ्ञति
(५) कथावत्थु	(६) यमक
(७) पट्ठान	

इस तरह, **'उदान'** त्रिपिटक के खुद्दक-निकाय विभाग के पंद्रह ग्रंथों में से एक है।

'उदान' के विषय, सूक्ष्म से सूक्ष्म दार्शनिक होते हुए भी, इतने सरल और स्पष्ट हैं कि इसे समझने में साधारण से साधारण पाठक को वैसी कठिनाई न होगी। जहाँ तहाँ, मैंने अधो-टिप्पणी देकर अर्थ को स्पष्ट कर देने का प्रयत्न किया है।

आठवें वर्ग के आरम्भ में कुछ निर्वाण-विषयक उदान आते हैं। 'निर्वाण' का क्या स्वरूप है इसे बिना समझे इन उदानों को ठीक ठीक समझना कठिन है। अतः 'धर्मदूत' वर्ष २, अंक ८ में प्रकाशित अपने "निर्वाण" शीर्षक लेख को यहाँ उद्धृत कर देता हूँ, जिसमें इस कठिन विषय पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

निर्वाण

कारखाने में कारीगर मशीन चालू करता है। मशीन के चलने से उसमें रगड़ पैदा होती है। रगड़ से बिजली पैदा होती है। वह बिजली बह कर आती है और मेरे कमरे के पंखे को चलाती है।

अब, यदि कारखाने में कारीगर न आवे तो मशीन चालू न हो। यदि मशीन चालू न हो तो उसमें रगड़ भी पैदा न हो। यदि रगड़ पैदा न हो तो बिजली भी पैदा न हो। यदि बिजली पैदा न हो तो मेरा पंखा भी न घूमे।

ऊपर के उदाहरण से यह बात स्पष्ट है कि हेतु और परिणाम के सिल-सिले में कोई भी घटना अपने पहले होनेवाली घटना पर आश्रित है और अपने बाद होनेवाली किसी दूसरी घटना का आश्रय है। तथा, इस सिल-सिले में यदि कहीं कोई एक कड़ी टूटती है तो उसके हेतु से होने वाली घट-नाओं का सारा चक्र बन्द हो जाता है।

संसार के किसी क्षेत्र में भी हेतु परिणाम का यह नियम समान रूप से सत्य होता है। इसी को बौद्ध-दर्शन में "प्रतीत्य-समुत्पाद' के नाम से पुकारा गया है। प्रतीत्य=**इसके होने से**; समुत्पाद=**यह उत्पन्न होता है।**

भगवान् बुद्ध ने दुःखमय संसार का स्रोत इसी प्रतीत्य-समुत्पाद से समझाया है।

तृष्णा के होने से उपादान होता है। हम एक सुन्दर वस्तु को देख कर उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। मन में होता है—मैं इसे पाऊँ, यह मेरी होवे। यही तृष्णा है। ऐसी इच्छा पैदा होने से हम उसकी प्राप्ति के लिए तरह तरह के यत्न करने लग जाते हैं। यही है उपादान।

उपादान के होने से भव होता है। जीवन क्या है? क्षण-क्षण

अनवरत रूप से एक चीज़ को पाने और दूसरी को हटाने में प्रत्येक प्राणी चेष्टावान् है। ऐसे एक भी जीव की कल्पना करना सम्भव नहीं है जो संसार में रह कर सर्वथा चेष्टा-शून्य हो। अतः, सिद्ध होता है कि उपादान-चेष्टा के आधार पर ही हमारे जीवन की धारा बह रही है। इसी जीवन-धारा को "भव" कहते हैं।

भव के होने से जन्म, बूढ़ा होना, मरना तथा नाना दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं।

अब, यदि हम अपनी तृष्णा पर विजय पा लें तो उपादान नहीं होगा। यदि किसी वस्तु के लिए कोई इच्छा ही नहीं होगी तो भला कोई प्रयत्न—चेष्टा कैसे हो सकती है!! उपादान के बन्द हो जाने से भव भी नहीं रहता। भव के न होने से जन्म लेना, बूढ़ा होना, मरना इत्यादि सभी रुक जाते हैं। **सारा दुःख रुक जाता है।** इसी को निर्वाण कहते हैं।

एक असङ्गत प्रश्न

कुछ लोग पूछा करते हैं, "किन्तु मनुष्य के परिनिर्वाण पा लेने पर उस का क्या होता है?"

यह एक असङ्गत प्रश्न है। मनुष्य की जीवन-धारा तब तक बह रही थी, जब तक तृष्णा के होने से उपादान हो रहे थे। अब तृष्णा के बन्द हो जाने से उपादान रुक गया; उपादान के रुक जाने से उसकी जीवन-धारा भी रुक गई। हेतु के न होने से उसपर आश्रित परिणाम भी नहीं हो पाते।

यह प्रश्न तो ऐसा ही है कि यदि कोई पूछे, "बटन दबा देने के बाद बिजली के हरकत पैदा करने का क्या हो जाता है?" इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि "हेतु=प्रत्यय के न होने से परिणाम =उत्पाद भी नहीं होती।"

तो, क्या निर्वाण अपने को मिटा देना है ?

कोई कोई प्रश्न करते हैं, "तो निर्वाण क्या आत्म-उच्छेद है ?"

यह प्रश्न एक "मैं" की भ्रान्तिमूलक दृष्टि पर अवलम्बित है। जो "अहंभाव—आत्म-भाव" की अविद्या से छूटा नहीं है वही भ्रम में पड़कर ऐसा प्रश्न कर सकता है। यथार्थ में कोई एक "मैं" या "आत्मा" तो है नहीं जिसका उच्छेद हो। निर्वाण उच्छेद नहीं, किन्तु तृष्णा का अशेष निरोध कर देना है; जिसके निरुद्ध हो जाने से उपादान, भव तथा दुःख समुदाय का सारा चक्र बन्द हो जाता है।

* * *   * * *

अन्त में, मैं अपने मित्रवर पं० उदयनारायण त्रिपाठी, एम० ए०, 'साहित्यरत्न' को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने प्रूफ़ देखने में बड़ी सहायता की है। मेरे शिष्य श्रामणेर सुमन ने विषय-सूची तथा नाम-सूची तैयार की है।

सारनाथ
७–७–३८

भिक्षु जगदीश काश्यप

विषय-सूची

तीसरा वर्ग

नन्द वर्ग

चौथा वर्ग

मेघिय वर्ग

पाँचवाँ वर्ग

सोण स्थविर का वर्ग

छठा वर्ग

जात्यन्ध वर्ग

सातवाँ वर्ग

चूल वर्ग

आठवाँ वर्ग

पाटलि ग्राम वर्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

उदान*

पहला वर्ग

बोधि वर्ग

§ १—अनुलोम प्रतीत्य-समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **उरुवेला**[१] में **नेरञ्जरा** नदी के तट पर बोधिवृक्ष के नीचे अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय, भगवान् विमुक्ति-सुख का अनुभव करते, सप्ताह भर, एक ही आसन लगाये बैठे रहे। तब, उस सप्ताह के बीतने पर भगवान् ने उस समाधि से उठ कर, रात के पहले याम में ही प्रतीत्य-समुत्पाद का सल्टे तौर पर (अनुलोम) मनन किया—**इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है**—जो "अविद्या के प्रत्यय से संस्कार,

संस्कार के प्रत्यय से	विज्ञान,
विज्ञान के प्रत्यय से	नाम और रूप,

---

* **उदान=प्रीति-वाक्य।**

१ **"बड़ा भारी बालू का ढेर" —(अट्ठकथा)**

नाम और रूप के प्रत्यय से	छ: आयतन,
छ: आयतन के प्रत्यय से	स्पर्श,
स्पर्श के प्रत्यय मे	वेदना,
वेदना के प्रत्यय से	तृष्णा,
तृष्णा के प्रत्यय से	उपादान,
उपादान के प्रन्यय से	भव,
भव के प्रत्यय से	जाति,

जाति के प्रत्यय से बूढ़ा होना, मर जाना, शोक करना, रोना पीटना, दुःख उठाना, बेचैनी, और परेशानी होती है। इस तरह सारा दुःख-समुदाय उठ खड़ा होता है"। इसे जान कर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जब क्षीणाश्रव तपस्वी योगी को धर्म[1] प्रगट हो जाते हैं तब उसकी सारी कांक्षाएँ मिट जाती हैं, क्योंकि वह हेतु के साथ धर्म को जान लेता है"॥१॥

*** ***

§ २—प्रतिलोम प्रतीत्य-समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर बोधिवृक्ष के नीचे अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय, भगवान् विमुक्ति-सुख का अनुभव करते सप्ताह भर एक ही आसन लगाये बैठे रहे। तब, उस सप्ताह के बीतने पर भगवान् ने उस समाधि से उठ कर, रात के

---

[1] धर्म-ज्ञान=सत्य-ज्ञान—"बोधि-पक्षीय धर्म, या चतुः सत्य-धर्म" (अट्ठकथा)

बिचले याम में प्रतीत्य-समुत्पाद का उल्टे तौर पर (=प्रतिलोम) मनन किया—**इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है**—जो, "अविद्या के रुक जाने से संस्कार रुक जाते हैं,

संस्कार के रुक जाने से विज्ञान रुक जाता है,
विज्ञान के रुक जाने से नाम और रूप रुक जाते हैं,
नाम और रूप के रुक जाने से छः आयतन रुक जाते हैं,
छः आयतन के रुक जाने से स्पर्श रुक जाता है,
स्पर्श के रुक जाने से वेदना रुक जाती है,
वेदना के रुक जाने से तृष्णा रुक जाती है,
तृष्णा के रुक जाने से उपादान रुक जाता है,
उपादान के रुक जाने से भव रुक जाता है,
भव के रुक जाने से जाति रुक जाती है,

जाति के रुक जाने से बूढ़ा होना, मर जाना, शोक करना, रोना पीटना, दुःख उठाना, बेचैनी और परेशानी रुक जाती है। इस तरह, सारा दुःख-समुदाय रुक जाता है।" इसे जान कर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जब क्षीणाश्रव तपस्वी योगी को धर्म प्रगट हो जाते हैं तब, उसकी सारी कांक्षाएँ मिट जाती हैं, क्योंकि उसने प्रत्ययों के क्षय को जान लिया"।।२।।

* * * * * *

§ ३—अनुलोम और प्रतिलोम प्रतीत्य-समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर बोधिवृक्ष के नीचे अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय,

भगवान् विमुक्ति-सुख का अनुभव करते सप्ताह भर एक ही आसन लगाये बैठे रहे। तब, उस सप्ताह के बीतने पर भगवान् ने उस समाधि से उठ कर, रात के पिछले याम में प्रतीत्य-समुत्पाद का सल्टे और **उल्टे (अनुलोम** और प्रतिलोम) मनन किया—**इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने के यह रुक जाता है**—जो, अविद्या के प्रत्यय से संस्कार ० सारा दुःख-समुदाय उठ खड़ा होता है : इसी अविद्या के बिलकुल रुक जाने से संस्कार रुक जाते हैं ० सारा दुःख-समुदाय रुक जाता है। इसे जान कर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जब क्षीणाश्रव तपस्वी योगी को धर्म प्रगट हो जाते हैं तब वह **मार**[1] की सेना को छिन्न भिन्न कर देता है आकाश में चमकते हुए सूरज के ऐसा" ॥३॥

* * *   * * *

§ ४—ब्राह्मण कौन है ?

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर **अजपाल**[2]

---

[1] **मार=पाप।**

[2] अजपाल निग्रोध—"(१) **उसकी छाया में बकरचरवे** (अजपाल) **आ कर बैठा करते थे, इसी से उसका** (वृक्षका) **नाम 'अजपाल-निग्रोध' पड़ गया।** (२) **दूसरे लोगों का कहना है कि—वेदों के पाठ करने में** असमर्थ **कुछ बूढ़े ब्राह्मण वहाँ चारों ओर हाता घेर कर और झोपड़े लगा कर वास करते थे। इसी से इसका नाम 'अजपाल निग्रोध' पड़ा। इसका अर्थ यों है—जो जप नहीं करते हैं वे "अजप" कहलाये; अर्थात् मन्त्रों के पाठ न**

बरगद की छाया में अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय, भगवान् विमुक्ति-सुख का अनुभव करते सप्ताह भर एक ही आसन लगाए बैठे रहे। उस सप्ताह के बीतने पर भगवान् समाधि से उठे। तब, हुहुङ्क[१] जाति का कोई ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया; आकर भगवान् का अभिनन्दन किया; अभिनन्दन करना समाप्त कर एक ओर खड़ा हो गया; एक ओर खड़ा होकर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—

"हे गौतम! किन बातों के होने से कोई ब्राह्मण होता है? ब्राह्मण बनने के लिए किसी में कौन से धर्म होने चाहिए?"

इस बात को जान कर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसने पाप-धर्मों को बाहर कर दिया है, वही ब्राह्मण है; जो 'हुं हुं' नहीं करता, (रागादि) कसाव से रहित, और संयमशील है, जो निर्वाण पद[२] जानता है, सफल ब्रह्मचर्य वाला है, वही धर्म पूर्वक

करने वाले। वे 'अजप' जहाँ वास करते हैं (=अग्लेन्ति) वह हुआ 'अजपाल'। (३) दूसरे लोगों का कहना है—दुपहरिए में अपने नीचे आए हुए बकरियों (अजों) को अपनी छाया से पालन करता है, बचाव करता है, इसलिए उसका नाम 'अजपाल' पड़ा।" (अट्ठकथा)

[१] हुहुङ्क—". . . . वह अभिमान और क्रोध के मारे दूसरी जाति के लोगों को देख कर उनसे घृणा कर के "हुं हुं" कहा करता था। इसीसे उसका नाम 'हुंहुङ्क' पड़ा। वह जाति का ब्राह्मण था।" (अट्ठकथा)

[२] वेदन्तगू—"जो चारो मार्ग को (स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्) जान कर संस्कारों के बिलकुल अन्त निर्वाण पद को जान लेता है।" (अट्ठकथा)

अपने को ब्राह्मण कह सकता है, जिसे संसार में कहीं भी उस्सद[1] नहीं है" ॥४॥

***　　***

§ ५—ब्राह्मण कौन है ?

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् **सारिपुत्र**, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन**, आयुष्मान् **महाकाश्यप**, आयुष्मान् **महाकात्यायन**, आयुष्मान् **महाकोट्ठित**, आयुष्मान् **महाकप्पिन**, आयुष्मान् **महाचुन्द**, आयुष्मान् **अनुरुद्ध**, आयुष्मान् **रेवत**, आयुष्मान् **देवदत्त** और आयुष्मान् **आनन्द** सभी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये।

भगवान् ने उन आयुष्मानों को दूर ही से आते देखा; देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! ये ब्राह्मण आ रहे हैं; भिक्षुओ ! ये ब्राह्मण आ रहे हैं।

(भगवान् के) ऐसा कहने पर किसी ब्राह्मण जाति के भिक्षु ने भगवान् से पूछा, "भन्ते ! किन बातों के होने से कोई ब्राह्मण होता है ? ब्राह्मण बनने के लिए किसी में कौन से धर्म होने चाहिए ?"

इसे जान कर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

---

[1] किसी विषय के साथ जिसको, राग का उस्सद, द्वेष का उस्सद, मोह का उस्सद, मान का उस्सद, या आत्म-दृष्टि का उस्सद नहीं होता हो—जो बिलकुल प्रहीण हो गया हो। (अट्ठकथा)

"पाप-धर्मों को बाहर कर
　　जो सदा स्मृतिमान् रहते हैं।
सभी बन्धनों[1] के कट जाने से जो बुद्ध हो गए हैं
　　संसार में वही ब्राह्मण कहे जाते हैं" ॥५॥

***　　　　***

§ ६—ब्राह्मण कौन है ?

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन कलन्दक निवाप**[2] में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् **महाकाश्यप** पिप्फलि गुहा[3] में विहार कर रहे थे; वे वहाँ किसी कड़े रोग से बहुत बीमार पड़े थे। तब, आयुष्मान् **महाकाश्यप** कुछ दिनों के बाद उस बीमारी से उठे। बिमारी से उठकर आयुष्मान् **महाकाश्यप** के मन में यह बात आई—अब मैं **राजगृह** में भिक्षाटन के लिए जाऊँ। उस समय, आयुष्मान् **महाकाश्यप** को पिण्डपात्र देने के लिए पाँच सौ देवता उत्सुक हो कर आए। आयुष्मान् **महाकाश्यप** उन पाँच सौ देवताओं को छोड़कर, सुबह में, पहन, पात्र-चीवर ले **राजगृह** के दरिद्र, कृपण, और नीच जाति के जुलाहों की गली में भिक्षाटन के लिए चले गए।

भगवान् ने आयुष्मान् **महाकाश्यप** को **राजगृह** के दरिद्र, कृपण, और नीच जाति के जुलाहों की गली में भिक्षाटन करते देखा। इसे देख,

---

[1] **दश प्रकार के बन्धन (=संयोजन)—देखो 'मिलिन्द प्रश्न' की बोधिनी, परिशिष्ट, पृ० १२. १६**

[2] **"गिलहरियों (=कलन्दकों) को यहाँ अभय (=निवाप) दे दिया गया था, इसीलिये इस (विहार) का नाम कलन्दक निवाप पड़ा था" (अट्ठकथा)**

[3] **अट्ठकथा में** "पावाय" **(पावाग्राम में) ऐसा पाठ है।**

उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"दूसरों को पोसने पालने की चिन्ता में न पड़े हुए अभिज्ञात, दान्त, विमुक्ति पर प्रतिष्ठित, क्षीणाश्रव और द्वेष से रहित हो गये (मनुष्य) को ही मैं सच्चा ब्राह्मण मानता हूँ" ॥६॥

* * * * * *

§७—पिशाच का "अक्कुल बक्कुल" कहकर भगवान् को डराना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् पाटलि[1] (ग्राम) में अजकलापक नामक यक्ष के स्थान अजकलापक चैत्य[2] पर विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे। रह रह कर कुछ रिमझिम पानी बरस रहा था।

तब, **अजकलापक** यक्ष भगवान् को डरा, घबड़ा और रोंगटे खड़ा कर देने की इच्छा से, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास में पहुँच कर तीन बार **'अक्कुलो-पक्कुलो[3] अक्कुलो-पक्कुलो'** चिल्ला उठा—जिससे भगवान् डर जायँ—देख श्रमण, यह पिशाच आया!!

इसे देखकर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जब ब्राह्मण अपने-धर्मों को[4] पार कर लेता है, तब पिशाच और 'अक्कुल-पक्कुल' के परे हो जाता है" ॥७॥

* * * * * *

---

[1] अट्ठकथा में "पावाय" (पावाग्राम में)—ऐसा पाठ है।

[2] उस चैत्य पर बकरियों (=अज) की खूब बलि चढ़ती थी, जिससे यह यक्ष शान्त रहता था। इसी से उस चैत्य का नाम 'अजकलापक' पड़ा।

[3] अक्कुलो-पक्कुलो—"यह अनुकरण-शब्द है।" (अट्ठकथा)

[4] यदा सकेसु धम्मेसु—"(१) जब आत्म दृष्टि के आधार-भूत अपने

§ ८–*संगाम जी ब्राह्मण हैं*

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में अनाथपिण्डिक के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय, आयुष्मान् **सङ्गाम जी** भगवान् के दर्शन के लिए **श्रावस्ती** गए थे। आयुष्मान् **सङ्गाम जी** की पहली स्त्री ने सुना–आर्य **सङ्गाम जी** श्रावस्ती आए हुए हैं। वह अपने बच्चे को लेकर जेतवन गई। उस समय, आयुष्मान् **सङ्गाम जी** किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठे थे। तब वह...... जहाँ आयुष्मान् **सङ्गाम जी** थे, वहाँ गई, और उनसे बोली, "हे श्रमण! इस बच्चे वाली मेरा आप पोषण करें।"

उसके ऐसा कहने पर आयुष्मान् **सङ्गाम जी** चुप रहे।

दूसरी बार भी वह बोली, "हे श्रमण! इस बच्चे वाली मेरा आप पोषण करें।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् **सङ्गाम जी** चुप रहे।

तीसरी बार भी वह०

तीसरी बार भी आयुष्मान् **सङ्गाम जी** चुप रहे।

तब, वह उस बच्चे को आयुष्मान् **सङ्गाम जी** के सामने छोड़कर चली गई—यह आपका जन्मा बच्चा है, इसे पोसें।

आयुष्मान् **संगाम जी** ने न तो बच्चे की ओर आँख उठाकर देखा और न कुछ कहा।

तब, वह स्त्री कुछ दूर जा, घूमकर देखने लगी, तो **संगाम जी** को उसी

पाँच स्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) को प्रज्ञा से यथार्थतः जानकर उनके परे हो जाता है। (२) अथवा, मुमुक्षुजन के अपने शील, समाधि इत्यादि जो धर्म हैं, उन्हें.....पूरा....कर।..." (अट्ठकथा)

तरह न तो बच्चे की ओर आँख उठाकर देखते और न कुछ कहते पाई। इसे देखकर उसके मन में यह बात आई—इस श्रमण को अपने पुत्र से अब कोई नाता नहीं है। सो वह लौटकर अपने पुत्र को उठाकर चली गई।

भगवान् ने अपने दिव्य विशुद्ध अलौकिक चक्षु से आयुष्मान् **सङ्गाम जी** की स्त्री की इस दशा को देखा। इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"उसके आने पर न खुस होता है,
और न जाने पर नाराज।
आसक्तियों से बिलकुल छूटे
सङ्गाम जी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ" ॥८॥

* * *   * * *

§ ९—स्नान और होम करने से शुद्धि नहीं होती

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् गया में गयाशीर्ष (पर्वत) पर विहार कर रहे थे।

उस समय, कुछ जटाधारी साधु, हेमन्त ऋतु की आठ दिनों वाली अत्यन्त ठंडी रातों में, पाला पड़ने के समय गया (घाट) में डुबकियाँ ले रहे थे, पानी डाल डालकर नहा रहे थे, और आग में होम कर रहे थे—कि इससे शुद्ध हो जाऊँगा।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"स्नान तो सभी लोग करते हैं,
किंतु, पानी से कोई शुद्ध नहीं होता।
जिसमें सत्य है और धर्म है,
वही शुद्ध है, वही ब्राह्मण है" ॥९॥

* * *   * * *

§ १०—बाहिय दारुचीरिय की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय, **बाहियो** नामक वल्कल-धारी (साधु) **सुप्पारक** तीर्थ पर वास करता था। लोग उसका सत्कार=आदर=सम्मान करते थे। पूजित और प्रतिष्ठित हो, उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन और दवा बीरो बराबर प्राप्त होते रहते थे। तब, **बाहिय०** के मन में ऐसा वितर्क उठा—संसार में जो अर्हत् या अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़ हैं, उनमें मैं भी एक हूँ।

तब, **बाहिय०** के गृहस्थ-काल के कुल-देवता—जो उसके बड़े कृपालु और हितैषी थे—अपने चित्त से उसके चित्त के वितर्क को जानकर वहाँ पधारे और उसके पास जाकर बोले, "**बाहिय**! तुम अर्हत् नहीं हो, और न अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़; अर्हत् या अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़ होने की राह को भी तुम नहीं पकड़ पाए हो।"

अच्छा, तो देवताओं और मनुष्यों के साथ, इस लोक में कौन ऐसे हैं, जो अर्हत् या अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़ हो चुके हैं?

बाहिय! **जम्बूद्वीप** के उत्तर में **श्रावस्ती** नाम का एक नगर है। वहाँ इस समय अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् विहार कर रहे हैं। **बाहिय**! वही भगवान् स्वयं अर्हत् हो दूसरों को अर्हत्-पद पाने का धर्मोपदेश करते हैं।

बाहिय देवता से इस प्रकार उत्तेजित किये जाने पर उसी समय **सुप्पारक** से चल पड़ा। बीच में केवल एक रात कहीं टिककर **श्रावस्ती** में **अनाथ-पिण्डिक** के **जेतवन** आराम में जहाँ भगवान् विहार करते थे वहाँ पहुँचा। उस समय बहुत से भिक्षु खुली जगह में चंक्रमण कर रहे थे। तब, **बाहिय०** जहाँ वे भिक्षु थे, वहाँ गया और उनसे पूछा, "भन्ते! इस समय अर्हत्

सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् कहाँ विहार कर रहे हैं ? मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ।"

हे **बाहिय !** भगवान् इस समय पिण्डपात के लिए गाँव में पैठे हैं।

तब, **बाहिय** घबड़ाया हुआ **जेतवन** से निकलकर **श्रावस्ती** की ओर चला गया। वहाँ भगवान् को भिक्षाटन करते–सुन्दर, दर्शनीय, शान्त इन्द्रियों वाला, शान्त चित्त वाला, उत्तम शमथ और दमथ[१] को प्राप्त, दान्त, संयमी, परम निर्मल—देखा। देखकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया; जाकर भगवान् के चरणों पर माथा टेककर बोला, "भन्ते ! भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें। सुगत मुझे धर्मोपदेश करें। जो मुझे चिरकाल तक हित और सुख के लिए हो।"

उसके ऐसा कहने पर भगवान् बोले, "**बाहिय !** यह उचित समय नहीं है; अभी मैं भिक्षाटन के लिए निकला हूँ।"

दूसरी बार भी बाहिय ० बोला, "भन्ते ! भगवान् की या मेरी ही जिन्दगी का कौन ठिकाना। भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें ० जो चिर काल तक मेरे हित और सुख के लिये हो।"

दूसरी बार भी भगवान् बोले, "**बाहिय !** यह उचित समय नहीं है०।"

तीसरी बार भी **बाहिय०** बोला, "भन्ते ! भगवान् की या मेरी ही जिन्दगी का कौन ठिकाना। भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें ० जो चिर काल तक मेरे हित और सुख के लिये हो।"

अच्छा, तो बाहिय ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—देखने में केवल देखना ही चाहिये,[२] सुनने में केवल सुनना ही चाहिए, सूँघने चखने या

---

[१] "लोकोत्तर प्रज्ञा-विमुक्ति और चेतो-विमुक्ति वाले उत्तम शमथ और दमथ को जो प्राप्त कर चुके हैं।" (अट्ठकथा)

[२] आँख से रूपों को देखकर उनके प्रति राग-द्वेष या मोह नहीं

स्पर्श[१] करने में केवल सूँघना, चखना और स्पर्श करना ही चाहिए, जानने में केवल जानना ही चाहिए। **बाहिय** ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए। **बाहिय** ! यदि तुम देखने में केवल देखने वाला. . . . . . जानने में केवल जानने वाला होकर रहोगे तो उन में नहीं लगोगे (आसक्त होगे)। **बाहिय** ! यदि तुम उन में नहीं लगोगे तो न यहाँ और न परलोक में पड़ोगे। यही दुःखों का अन्त कर देना (=निर्वाण) है।

भगवान् के इस संक्षेप में कहे गए धर्मोपदेश को सुनकर ही बाहिय ० का चित्त उपादान (=सांसारिक आसक्ति) से रहित तथा आश्रवों से मुक्त हो गया। भगवान् भी उसे इस तरह संक्षेप में उपदेश देकर चले गए।

भगवान् के चले जाने के बाद ही नए साँढ़ ने **बाहिय**० को उठाकर ऐसा पटका कि वह मर ही गया।

तब, भगवान् **श्रावस्ती** में भिक्षाटन कर भोजन कर लेने के बाद कुछ भिक्षुओं के साथ नगर के बाहर आए। वहाँ **बाहिय** ० को मरा पड़ा देखकर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रण किया, "भिक्षुओ ! रन्थी बनाकर बाहिय के शरीर को ले जाओ; इसे अग्नि-दाह कर इसके भस्मों के ऊपर एक स्तूप उठवा दो। भिक्षुओ ! तुम्हारा एक सब्रह्मचारी (गुरुभाई) मर गया है।"

"बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दे ० उसके भस्मों पर एक स्तूप उठवा दिया। उसके बाद, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे

करना—केवल देखना ही भर। **ऐसे ही, सुनने आदि में भी समझ लेना चाहिए। (अट्ठकथा)**

[१] मुतं—**इस एक शब्द से सूँघना, चखना और स्पर्श करना तीनों समझ लिया जाता है।**

वहाँ गये और प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! **बाहिय** ० के शरीर का अग्नि-दाह कर दिया; उसके भस्मों पर स्तूप भी उठवा दिया। भन्ते! उसकी क्या गति होगी?"

भिक्षुओ! **बाहिय** ० पण्डित था; निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ हो गया था; मेरे बताये धर्मोपदेश को उसने ठीक ठीक ग्रहण कर लिया था। भिक्षुओ! **बाहिय** ० परिनिर्वाण पा चुका। इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

> "जहाँ[1] जल, पृथ्वी, अग्नि या वायु नहीं ठहरती, वहाँ न तो शुक्र और न आदित्य प्रकाश करते हैं। वहाँ चाँद भी नहीं उगता है; न तो वहाँ अन्धकर होता है। जब क्षीणाश्रव भिक्षु अपने आप जान लेता है, तब रूप अरूप तथा सुख दुःख से छूट जाता है" ॥१०॥

---

[1] जिस निर्वाण में।

दूसरा वर्ग

मुचलिन्द वर्ग

§ १—मुचलिन्द सर्पराज की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **उरुवेला** में **नेरञ्जरा** नदी के तीर पर **मुचलिन्द** वृक्ष के नीचे अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय, भगवान् सप्ताह भर एक ही आसन पर विमुक्ति-सुख का अनुभव करते बैठे थे। उस समय, बिना मौसिम का एक भारी मेघ उठा; सप्ताह भर आकाश बादलों से घिरा रहा; ठंडी हवा चलती रही; बड़ा दुर्दिन हो गया।

तब, **मुचलिन्द सर्पराज** अपने स्थान से निकल, भगवान् के शरीर को सात बार लपेट, ऊपर अपना फन फैलाकर खड़ा हो गया—भगवान् को सर्दी, गर्मी, हड्डा, मच्छर, धूप, हवा, साँप, बिच्छू लगने न पावे। सप्ताह के बीतने पर भगवान् उस समाधि से उठे। तब, **मुचलिन्द सर्पराज** आकाश को खुला और बादल को फटा जान, भगवान् के शरीर से अपनी लपेट को खोल, अपने रूप को छोड़ एक ब्राह्मण-विद्यार्थी का रूप धारण कर, अञ्जलि से भगवान् को प्रणाम करते हुए सामने खड़ा हो गया।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े:—

"जो संतुष्ट और बुद्ध-धर्म का ज्ञानी है, उसी को यथार्थ में सुख और विवेक है।

सभी प्राणियों के प्रति संयम और मित्रभाव का होना यथार्थतः इस संसार में सुख है।

संसार से अनासक्त होना और अपने कामों को जीत लेना,
आत्मभाव का जो नाश कर देना है, वही सुख और परम सुख है" ॥१॥

* * *   * * *

§ २—धार्मिक कथा या उत्तम मौन-भाव

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय, पिण्डपात से लौट, भोजन कर चुकने के बाद उपस्थान-शाला में[1] इकट्ठे होकर बैठे कुछ[2] भिक्षुओं के बीच ऐसी बात चली—मगधराज **सेनिय बिम्बिसार** और कोशलराज **प्रसेनजित**, इन दो राजाओं में कौन अधिक धनी, सम्पत्ति-शाली, बड़ा कोष वाला, बड़ा राज्य वाला, अधिक वाहनों वाला, अधिक बली, अधिक प्रतापी या अधिक तेजस्वी है? अभी भिक्षुओं के बीच यह बात चल ही रही थी।

तब, भगवान् साँझ को ध्यान से उठ, जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये; जाकर बिछे आसन पर बैठ गये और बोले, "भिक्षुओ! किस बात से यहाँ इकट्ठे होकर बैठे हो, तुम लोगों में क्या बात चल रही थी?"

भन्ते! यही, पिण्डपात से लौट, भोजन कर चुकने के बाद ० कौन अधिक धनी० है—इसी की बात चल रही थी। यह बात समाप्त भी नहीं होने पायी थी कि भगवान् पधारे।

---

[1] "धर्म-सभा-मण्डप में" (अट्ठकथा)

[2] सम्बहुला:—"विनय के अनुसार तीन लोगों को 'सम्बहुल' कहते हैं, उससे अधिक होने से 'संघ' कहा जाता है। सूत्रों के अनुसार तीन लोगों को तीन ही; उससे ऊपर को 'सम्बहुल' कहते हैं।" (अट्ठकथा)

भिक्षुओ! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए तुम कुलपुत्रों के लिए यह अनुचित है कि ऐसी चर्चा में पड़ो। भिक्षुओ! इकट्ठे होकर तुम्हें दो ही काम करने चाहिए (१) **धार्मिक कथा**, या (२) **उत्तम मौन भाव।**

यह कह, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो सांसारिक काम-सुख हैं, और जो तृष्णा के क्षीण होने से दिव्य सुख होता है, उनमें यह उसकी सोलहवीं कला भर भी नहीं है" ॥२॥

* * *

§ ३—साँप मारने वाले लड़कों को भगवान् का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय कुछ लड़के **श्रावस्ती** और **जेतवन** के बीच एक साँप को लाठी से पीट रहे थे। भगवान् सुबह में, पहन, पात्र-चीवर ले **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। तब, भगवान् ने उन लड़कों को **श्रावस्ती** और **जेतवन** के बीच एक साँप को लाठी से पीटते देखा।

यह देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"अपने सुख को चाहते हुए जो दूसरे को लाठी से पीटता है वह दूसरे जन्म में सुख का लाभ नहीं करता। जो सुख चाहने वाले जीवों को लाठी से नहीं पीटता है, अपना सुख चाहने वाला वह दूसरे जन्म में सुख पाता है[1]" ॥३॥

* * *

---

[1] **धम्मपद, दण्डवग्ग में यह गाथा आती है।**

§ ४—दूसरे मत के साधुओं का भिक्षुओं को गालियाँ देना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे। उस समय, लोग भगवान् का बड़ा सत्कार=आदर=सम्मान कर रहे थे। पूजित और प्रतिष्ठित हो उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान प्रत्यय (दवा बीरो) बराबर प्राप्त होते थे। भिक्षु-संघ का भी लोग बड़ा सत्कार ०।

किंतु, दूसरे मत के साधुओं को कोई सत्कार=आदर=सम्मान नहीं करता था : उनकी पूजा प्रतिष्ठा भी नहीं होती थी : उन्हें चीवर ० भी प्राप्त नहीं होते थे।

तब, वे दूसरे मत के साधु भगवान् के सत्कार को सह नहीं सकने के कारण गाँव या जंगल में कहीं भी भिक्षु को देख, असभ्य और कड़े शब्दों में भिक्षु-संघ को धिक्कारते थे, निन्दा करते थे और गालियाँ देते थे।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और उनका अभिवादन कर के एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! इस समय, लोग भगवान् का बड़ा सत्कार० करते हैं; लोग भिक्षु-संघ का भी बड़ा सत्कार० करते हैं; किंतु दूसरे मत के साधुओं को कोई सत्कार० नहीं करता। भन्ते ! इसलिए, वे दूसरे मत के साधु भगवान् के सत्कार को सह नहीं सकने के कारण० गालियाँ देते हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"गाँव या जंगल में सुख दु:ख को पा,
अपने और पराये का भेद न करे।[१]
उपाधि के[२] आधार पर ही स्पर्श लगते हैं
उपाधि के मिट जाने से स्पर्श कैसे लगेंगे!" ॥४॥

* * *　　* * *

§ ५—एक मनुष्य दूसरे के प्रति बन्धन होता है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय **इच्छानङ्गल** गाँव का एक उपासक किसी काम से **श्रावस्ती** आया हुआ था। वह उपासक **श्रावस्ती** में अपना काम समाप्त कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए उस उपासक को भगवान् ने कहा, "क्यों, बहुत दिनों के बाद तुम्हारा इधर आना हुआ!"

भन्ते! भगवान् के दर्शन के लिए आने को बहुत दिनों से सपर रहा था, किंतु कुछ न कुछ काम में बझ जाने के कारण नहीं आ सका।

इसे जान, भगवान् के मुहँ से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिस ज्ञानी और पण्डित पुरुष को कुछ नहीं है,
उसे ही यथार्थ में सुख है।

---

[१] (यथार्थतः) "इन पाँच स्कन्धों में न तो हम, हमारा है, न पर या पराया है। केवल संस्कार अपने कारण को पाकर क्षण क्षण उठते और लीन होते रहते हैं।" (अट्ठकथा)

[२] =पाँच स्कन्धों के सङ्घात।

देखो! संसारी जीव कैसा बझा रहता है! एक मनुष्य दूसरे के प्रति बन्धन होता है" ॥५॥

*** ***

§ ६—गर्भिणी स्त्री के लिए परिव्राजक का तेल पीकर कष्ट उठाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय किसी परिव्राजक की तरुण गर्भिणी स्त्री प्रसव करने वाली थी। तब, उस परिव्राजिका ने परिव्राजक को कहा, "ब्राह्मण! जायँ, थोड़ा तेल ले आयँ, प्रसव करने के बाद मुझे उसकी आवश्यकता होगी।"

उसके ऐसा कहने पर परिव्राजक बोला, "मैं तुम्हारे लिए कहाँ से तेल लाऊँ?"

दूसरी बार भी उस परिव्राजिका ने परिव्राजक को कहा, "ब्राह्मण! जायँ, थोड़ा तेल ले आयँ, प्रसव करने के बाद मुझे उसकी आवश्यकता होगी।"

दूसरी बार भी परिव्राजक बोला, "मैं तुम्हारे लिए कहाँ से तेल लाऊँ?"

तीसरी बार भी उस परिव्राजिका ने परिव्राजक को कहा, "ब्राह्मण! जायँ, थोड़ा तेल ले आयँ, प्रसव करने के बाद मुझे उसकी आवश्यकता होगी।"

उस समय कोशलराज **प्रसेनजित** के भण्डार में किसी साधु या ब्राह्मण को यथेच्छ घी या तेल वहीं बैठ कर पी लेने के लिए दिया जाता था, ले जाने के लिए नहीं।

तब, उस परिव्राजक के मन में ऐसा हुआ—कोशलराज **प्रसेनजित** के भण्डार में किसी साधु या ब्राह्मण को यथेच्छ घी या तेल वहीं बैठ कर पी लेने के लिए दिया जाता है, ले जाने के लिए नहीं। तो, मैं वहाँ जाकर मन भर पी लूँ, और घर लौट उगल कर इसे दे दूँ, जो प्रसव करने के बाद इसके काम में आवे।

तब, उस परिव्राजक ने कोशलराज **प्रसेनजित** के भण्डार में जा मन भर तेल पी लिया। जब घर लौटा तब न तो उसे बाहर कर सका और न भीतर ही रख सका : कष्ट और पीड़ा के मारे छट पट करने लगा।

उस समय सुबह में भगवान्, पहन, और पात्र चीवर ले **श्रावस्ती** में पिण्डपात के लिए पैठे। भगवान् ने उस परिव्राजक को कष्ट और पीड़ा के मारे छट पट करते देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिन्हें कुछ नहीं है वे ही सुखी हैं,
ज्ञानी लोग अपना कुछ नहीं रखते।
संसार में पड़े इसे छट पट करते देखो!
एक मनुष्य दूसरे के चित्त का बन्धन होता है" ॥६॥

* * *   * * *

§ ७—प्रेम को छोड़ने से मुक्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय किसी उपासक का इकलौता लाड़ला पुत्र मर गया था। तब, बहुत से उपासक भीगे कपड़े और भीगे बाल उस दुपहरिये में, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे उन उपासकों को भगवान् ने कहा, "इस दुपहरिये में तुम लोग ऐसे भीगे कपड़े और भीगे बाल क्यों आए हो?"

इसपर, वह उपासक बोला, "भन्ते! मेरा इकलौता लाड़ला पुत्र मर गया है, इसीसे हम लोग इस दुपहरिये में ऐसे भीगे कपड़े और भीगे बाल यहाँ आए हैं।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"देवता या मनुष्य, जो संसार से प्रेम कर लिपटे रहते हैं,
पाप और दुःख में पड़, वे मृत्युराज के वश में चले आते हैं।
जो दिन और रात सचेत रह, प्रेम को छोड़ते हैं,
वे पाप के मूल को खनते हैं: मृत्यु के फंदे में नहीं पड़ते" ॥७॥

* * * * * *

§८—सुप्पवासा की कथा। मूर्ख दुःख को सुख समझता है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **कुण्डिया** नगर के **कुण्डिधान वन** में विहार करते थे।

उस समय **कोलिय पुत्री सुप्पवासा** सात वर्षों तक गर्भ धारण करने के बाद, एक सप्ताह से मूलगर्भ में पड़ी थी। उस असह्य पीड़ा को वह त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) पर विश्वास के बल से सह रही थी—भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, जो इस प्रकार के दुःखों के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश करते हैं; उन भगवान् का श्रावक-संघ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ (=सुप्रतिपन्न) है, जो इस प्रकार के दुःखों के प्रहाण के लिए लगा है; निर्वाण परम सुख है, जहाँ इस प्रकार के दुःख नहीं होते। तब, ०**सुप्पवासा** ने अपने स्वामी को आमन्त्रित किया:—

"हे आर्यपुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जायें, जाकर मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिरसे प्रणाम करें, और उनका कुशल मंगल पूछें— भन्ते ! ० **सुप्पवासा** भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करती है और भगवान् का कुशल मंगल पूछती है—और ऐसा कहें, "भन्ते ! ०**सुप्पवासा** सात वर्षों तक० निर्वाण परम सुख है, जहाँ इस प्रकार के दुःख नहीं होते।"

"बहुत अच्छा" कह **कोलियपुत्र,** जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो कोलिय पुत्र बोला, "भन्ते ! ० **सुप्पवासा** भगवान् के चरणों पर शिरसे प्रणाम करती है और भगवान् का कुशल मंगल पूछती है। और ऐसा कहती है— भन्ते ! **सुप्पवासा** सात वर्षों तक ०।

'**कोलिय पुत्री सुप्पवासा** सुखी हो जाय, चंगी हो जाय, बिना किसी कष्ट के पुत्र प्रसव करे।'

भगवान् के ऐसा कहते ही वह सुखी हो गई, चंगी हो गई, बिना किसी कष्ट के उसने पुत्र प्रसव किया।

"भन्ते ! ऐसा ही हो" कह कोलियपुत्र भगवान् के कहे का अभिनन्दन करते हुए, अपने आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर, जहाँ अपना घर था, वहाँ लौट आया। कोलियपुत्र ने० **सुप्पवासा** को सुखी, चंगी, और बिना कष्ट के पुत्र प्रसव की हुई पाया। यह देख उसके मन में ऐसा हुआ, "आश्चर्य है, अद्भुत है, बुद्ध[१] की ऋद्धि और उनका तेज ! भगवान के कहने भर से यह सुखी ० हो गई !" वह संतोष और प्रमोद से भर गया; उसके मन में बड़ी भक्ति उमड़ आई।

तब, **सुप्पवासा** ने अपने स्वामी को आमन्त्रित किया, "आर्यपुत्र !

---

[१] पाली में 'तथागत' ऐसा पाठ आया है। "तथागत" शब्द के आठ अर्थ अट्ठकथा में विस्तार पूर्वक १६ पृष्ठों में समझाया गया है।

सुनें, जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जायँ, जाकर मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिरसे प्रणाम करें और उनका कुशल मंगल पूछें—भन्ते ! ० **सुप्पवासा** भगवान् के चरणों पर शिरसे प्रणाम करती है और भगवान् का कुशल मंगल पूछती है—और ऐसा कहें, "भन्ते ! ०**सुप्पवासा** सात वर्षों तक गर्भ धारण करती रही और सप्ताह भर मूल-गर्भ में पड़ी रही। वह अब सुखी, चंगी ० है। वह सप्ताह भर भिक्षु-संघ को भोजन के लिए निमन्त्रण देती है। भगवान् उसके निमन्त्रण को....... स्वीकार करें।"

"बहुत अच्छा" कह कोलियपुत्र, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कोलियपुत्र ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! ० **सुप्पवासा** ० ऐसा कहती है ० भगवान् उसके निमन्त्रण को....... स्वीकार करें।"

उस समय, कोई दूसरा उपासक बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को दूसरे दिन के लिए भोजन का निमन्त्रण दे गया था। वह उपासक आयुष्मान् **महा मौद्गल्यायन** का सेवा-टहल किया करता था। तब, भगवान् ने आयुष्मान् **महा मौद्गल्यायन** को आमन्त्रित किया, "सुनो, मौद्गल्यायन ! जहाँ तुम्हारा उपासक है वहाँ जाओ; जाकर उससे कहो, "आवुस ! **सुप्पवासा** ० अब सुखी चंगी ० है, सो उसने सप्ताह भर के लिए भिक्षु-संघ को भोजन का निमन्त्रण दिया है। पहले **सुप्पवासा** सप्ताह भर दान दे ले, उसके बाद आप की बारी आयगी।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह आयुष्मान् **महा मौद्गल्यायन** भगवान् को उत्तर दे, जहाँ वह उपासक था, वहाँ गए; जाकर उपासक से बोले, "आवुस ! **सुप्पवासा** ० ने निमन्त्रण दिया है। पहले वह दान दे ले, उसके बाद तुम देना।"

भन्ते आर्य **महा मौद्गल्यायन** ! यदि भोग, जीवित और श्रद्धा इन

तीन धर्मों में मेरी आप कोई आपत्ति नहीं देखते हैं, तो **सुप्पवासा** ही पहले सप्ताह भर दान दे ले उसके बाद मैं दूँगा।

आवुस ! भोग और जीवित, इन दो के विषय में तो मैं विश्वास दिलाता हूँ, किंतु श्रद्धा के विषय में तुम स्वयं जानो।

भन्ते आर्य **महा मौद्गल्यायन** ! यदि आप भोग और जीवित, इन दो के विषय में विश्वास दिलाते हैं तो **सुप्पवासा** ही पहले सप्ताह भर दान दे ले, पीछे मैं दूँगा।

आयुष्मान् **महा मौद्गल्यायन** उस उपासक को सूचित कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और बोले, "भन्ते ! मैंने उस उपासक को सूचित कर दिया। पहले **सुप्पवासा** सप्ताह भर दान दे ले, पीछे वह देगा।"

तब, ० **सुप्पवासा** ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को सप्ताह भर अपने हाथों से परोस कर अच्छे अच्छे भोजन खिलाए। अपने बच्चे को बुद्ध तथा भिक्षु-संघ के चरणों पर प्रणाम करवाया। आयुष्मान् **सारिपुत्र** ने उस बच्चे को कहा, "बच्चे ! अच्छे तो हो, कुछ कष्ट तो नहीं है ?"

भन्ते सारिपुत्र ! मैं कैसे अच्छा और सुखसे रह सकता हूँ ! सात वर्षों तक तो मैं खून के घड़े में पड़ा रहा !

तब, कोलियपुत्र **सुप्पवासा**—अरे ! मेरा पुत्र धर्मसेनापति[1] के साथ बातें करता है—संतोष, प्रमोद, और श्रद्धा से भर गई।

तब, भगवान् ने **सुप्पवासा** को कहा, "सुप्पवासे ! ऐसा ही एक और भी पुत्र लेना चाहती है ?"

भगवन् ! मैं ऐसे सात पुत्रों को लेना चाहूँगी।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

---

[1] आयुष्मान सारिपुत्र **"धर्मसेनापति" कहे जाते थे।**

"बुरे को अच्छे के रूप में, प्रिय के रूप में अप्रिय को
दुःख को सुख के रूप में प्रमत्त[1] लोग समझा करते हैं" ॥८॥

***   ***

§ ६—*पराधीनता में दुःख; स्वाधीनता में सुख*

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **मृगारमाता** के **पूर्वाराम** प्रासाद में विहार कर रहे थे।

उस समय **मृगारमाता विशाखा** को कोशलराज **प्रसेनजित** के यहाँ कुछ काम आ पड़ा था। उस काम को राजा ० जैसा चाहिए वैसा नहीं कर रहा था।

तब, मृगारमाता **विशाखा** उस दुपहरिये में, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई और भगवान् का अभिवादन कर के एक ओर बैठ गई।

एक ओर बैठी मृगारमाता **विशाखा** से भगवान् बोले, "विशाखे! इस दुपहरिये में कहाँ से आ रही है?"

भन्ते! मेरा कोशलराज प्रसेनजित् के यहाँ कुछ काम आ पड़ा है। उस काम को राजा ० जैसा चाहिए वैसा नहीं कर रहे हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"पराधीनता में दुःख ही दुःख है, स्वाधीनता में सुख ही सुख। छोटी छोटी बात से कष्ट पाते हैं, संसार के झंझटों से छूटना कठिन है" ॥९॥

***   ***

---

[1] संसार के प्रमाद में पड़े।

§ १०—भद्दिय । कितना सुख है ! कितना सुख है !!

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् **अनुप्रिया** के आम्रवन में विहार कर रहे थे।

उस समय **कोलिगोधा** के पुत्र आयुष्मान् **भद्दिय** जंगल, वृक्ष-मूल या शून्यागार कहीं भी जाकर उदान के यह शब्द निकाला करते थे, "कितना सुख है ! कितना सुख है !!"

कुछ भिक्षुओं ने ० आयुष्मान् **भद्दिय** को ० उदान के यह शब्द निकालते सुना कि, "कितना सुख है ! कितना सुख है !!" सुनकर उन लोगों के मन में ऐसा हुआ, "० आयुष्मान् **भद्दिय** अवश्य बेमन से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे हैं; अपने गृहस्थ-काल के राज्य-सुख को याद करके ही ० उनके मुँह से यह शब्द निकला करते हैं, "कितना सुख है ! कितना सुख है !!" वे भिक्षु भगवान् के पास गए और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा,

"भन्ते ! ० आयुष्मान् भद्दिय ० उदान के यह शब्द निकाला करते हैं, "कितना सुख है ! कितना सुख है !!" भन्ते ! आयुष्मान्, **भद्दिय** अवश्य बेमन से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे हैं, अपने गृहस्थ-काल के राज्य-सुख को याद कर के ही ० उनके मुँह से यह शब्द निकला करते हैं, "कितना सुख है ! कितना सुख है !!"

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया, "यहाँ आओ! मेरी ओर से आयुष्मान् **भद्दिय** को कहो —आवुस भद्दिय ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् **भद्दिय** थे, वहाँ गया और उनसे बोला, "आवुस ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् भद्दिय उस भिक्षुको उत्तर दे,

जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे आयुष्मान् भद्दिय को भगवान् ने कहा, "भद्दिय! क्या यह सच बात है कि तुम ० उदान के शब्द निकाला करते हो, 'कितना सुख है! कितना सुख है!!'?"

भन्ते! सच बात है।

भद्दिय! क्या देख कर तुम यह उदान के शब्द निकाला करते हो?

भन्ते! मेरे गृहस्थकाल में, राज्य-सुख के भोग करते समय, अन्तःपुर के भीतर भी कड़ा पहरा रहता था; अन्तःपुर के बाहर भी, नगर के भीतर भी, नगर के बाहर भी, जनपद के भीतर भी और जनपद के बाहर भी, सभी जगह पहरा ही पहरा रहता था। भन्ते! उस तरह पहरों के बीच बचाया और छिपाया जाकर भी मैं सदा डरा...और शङ्कित रहता था। किंतु, इस समय मैं अकेला ही जंगल, वृक्षमूल, या शून्यागार कहीं भी अभय, अनुद्विग्न, शङ्कारहित तथा अनुत्सुक हो, शान्त और विश्वस्त चित्त से दूसरों के दिए गए दान से संतुष्ट रह, विहार करता हूँ। भन्ते! इसी बात को देखकर ० मेरे मुँह से उदान के शब्द निकला करते हैं, "कितना सुख है! कितना सुख है!!"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसके भीतर कुछ मैल नहीं है,
जो लाभ अलाभ के द्वन्द्व से ऊपर उठ गया है।
उस निर्भय, सुखी और शोकरहित
मनुष्य को देवता लोग भी नहीं समझ सकते ॥१०॥"

तीसरा वर्ग

नन्द वर्ग

§ १—वह भिक्षु किसी से कुछ नहीं कहता

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय कोई भिक्षु भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए बैठा था। वह अपने पूर्व कर्मों के फल स्वरूप उत्पन्न, तीखे और कड़ुवे दुःख को स्मृतिमान् हो, शान्त चित्त से सह रहा था।

भगवान् ने उस भिक्षु को पास ही में आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, अपने पूर्वकर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न तीखे और कड़ुये दुःख को स्मृतिमान् हो शान्तचित्त से सहते देखा। उसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिस भिक्षु ने अपने सारे कर्मों को नष्ट कर दिया है,
जो पहले प्राप्त किए गए रज को हटा रहा है,
अहंकार भाव से रहित हो गए उसको
किसी से कुछ कहने को नहीं रह जाता" ॥१॥

* * *   * * *

§ २—आयुष्मान् नन्द का अर्हत् हो जाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय भगवान् के मौसेरे भाई आयुष्मान् **नन्द** ने कुछ भिक्षुओं को यह कहा, "आवुस! मैं बेमन से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहा हूँ; मैं अपने ब्रह्मचर्य को नहीं निभा सकता; शिक्षा को छोड़, मैं गृहस्थ हो जाऊँगा।"

तब, एक भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, उस भिक्षुने भगवान्‌को कहा, "भन्ते ! भगवान्‌के मौसेरे भाई आयुष्मान् **नन्द** कुछ भिक्षुओंसे यह कह रहे थे, 'आवुस ! मैं बेमन से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहा हूँ; मैं अपने ब्रह्मचर्य को नहीं निभा सकता; शिक्षा को छोड़, मैं गृहस्थ हो जाऊँगा।"

तब, भगवान्‌ने किसी भिक्षुको आमन्त्रित किया, "सुनो, मेरी ओर से जाकर भिक्षु **नन्द**को कहो, "आवुस नन्द ! आप को बुद्ध बुला रहे हैं।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् **नन्द** थे, वहाँ जाकर बोला, "आवुस नन्द ! आप को बुद्ध बुला रहे हैं।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **नन्द**, उस भिक्षुको उत्तर दे जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और उनका अभिवादन कर, एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे आयुष्मान् **नन्द** को भगवान्‌ने कहा, "नन्द ! क्या सच बात है कि तुम ने कुछ भिक्षुओं को यह कहा है, 'मैं बेमन से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहा हूँ; मैं अपने ब्रह्मचर्य को नहीं निभा सकता; शिक्षा को छोड़ मैं गृहस्थ हो जाऊँगा।"

हाँ भन्ते ! सच बात है।

नन्द ! तुम बेमन से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन क्यों कर रहे हो ? अपने ब्रह्मचर्य को क्यों नहीं निभा सकते ? शिक्षा को छोड़, गृहस्थ होना क्यों चाहते हो ?

भन्ते ! मेरे घर से निकलने के समय शाक्यानी **जनपदकल्याणी** ने खुले हुए केशों से मेरी ओर देखकर कहा था, "प्रिय ! जल्दी लौट आना"। भन्ते ! उसी की याद में मैं ब्रह्मचर्य पालन करने में असमर्थ हो रहा हूँ। मैं इस व्रत को नहीं निभा सकता। शिक्षा छोड़ गृहस्थ बन जाने की मेरी इच्छा हो रही है।

तब, भगवान् आयुष्मान् **नन्द** की बाँह पकड़—जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले—**जेतवन** में अन्तर्ध्यान हो तावतिंस देवलोक में प्रगट हुए। उस समय देवेन्द्र शक्र की सेवा में पाँच सौ अप्सरायें आई हुई थीं, जो कुक्कुट के पैर के समान कोमल और सुन्दर थीं। उन्हें दिखाकर भगवान्ने नन्द को आमन्त्रित किया, "नन्द ! इन ० अप्सराओं को देखते हो न ?"

हाँ भन्ते देखता हूँ।

नन्द ! तो तुम क्या समझते हो—शाक्यानी ० **जनपदकल्याणी** अधिक सुन्दर और दर्शनीय है या ये ०अप्सरायें ?

भन्ते ! जैसे नकटी और कनकटी, सड़ी पचकी बन्दरी हो, वैसे ही शाक्यानी **जनपदकल्याणी** इन ० अप्सराओं के सामने ठहरती है। वह इनके सामने एक कला भी नहीं है। किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा सकती है।

नन्द ! विश्वास करो, इन पाँच सौ अप्सराओं को तुम्हें दिला देने का मैं जामिनी होता हूँ। अभी तुम मन से ब्रह्मचर्य का पालन करो।

भन्ते ! यदि आप इन पाँच सौ अप्सराओं को दिला देने का जामिनी ठहरते हैं तो मैं अवश्य मन लगाकर, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा।

तब, भगवान् आयुष्मान् **नन्द** की बाँह पकड़ ० **तावतिंस** देवलोक में अन्तर्ध्यान हो **जेतवन** में प्रगट हुए।

भिक्षुओं ने सुना—भगवान् का मौसेरा भाई आयुष्मान् **नन्द** अप्सराओं

के लिए ब्रह्मचर्य पालन कर रहा है, और भगवान् स्वयं उन पाँच सौ अप्स-राओं को दिला देने के लिए जामिनी ठहरे हैं। तब, आयुष्मान् **नन्द** के साथी भिक्षु उसे कहने लगे, "हाँ, अच्छी मजदूरी कर रहे हो! अच्छा दाम भर रहे हो—**नन्द** अप्सराओं के कारण ब्रह्मचर्य की मजदूरी दे रहा है, दाम भर रहा है०।"

आयुष्मान् **नन्द**ने, अपने साथियों के इस तरह ताना मारने और चिढ़ाने पर भी कुछ बुरा न मानते हुए सच्ची लगन से तपश्चरण और आत्म-संयम कर, शीघ्र ही उस परम ब्रह्मचर्य के फल धर्म-साक्षात्कार को यहीं पर लाभ कर लिया, जिसके लिये श्रद्धापूर्वक कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं। उसकी जाति क्षीण हो गई। ब्रह्मचर्य-वास सफल हो गया। जो करना था सो कर लिया गया। "इसके आगे कुछ और करना बाकी नहीं है" इसे जान लिया। आयुष्मान् **नन्द** अर्हतों में एक हुए।

तब, कोई देवता ० रात बीतने पर, चमकते हुये सारे **जेतवन** को उजेला कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो, उस देवता ने भगवान् को कहा, 'भन्ते! भगवान् के मौसेरे भाई आयुष्मान् **नन्द** क्षीणाश्रव हो, यहीं पर चेतो-विमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को जान, उनका साक्षात् कर चुके।"

भगवान् ने भी स्वयं देख लिया—**नन्द** क्षीणाश्रव हो यहीं पर चेतो-विमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को जान, उनका साक्षात् कर चुका।

तब, आयुष्मान् **नन्द** उस रात के बीत जाने पर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् **नन्द** भगवान् से बोले, " भन्ते! उन पाँच सौ अप्सराओं के दिलाने के लिए जो भगवान् जामिनी बने थे उसे जाने दें; मुझे अब उसकी आवश्यकता नहीं है।

नन्द! मैंने भी अपने चित्त से जान लिया था—**नन्द** क्षीणाश्रव हो

यहीं पर चेतो-विमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को जान, उनका साक्षात् कर चुका है। देवता भी आकर मुझसे कह गया है, "भन्ते ! ० आयुष्मान् **नन्द** क्षीणाश्रव हो, यहीं पर चेतो-विमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को जान, उनका साक्षात् कर चुके हैं।" नन्द ! जिस समय तुम्हारी सांसारिक आसक्ति से मुक्ति हो गई, उसी समय मैं जामिनी से छूट गया।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो कीचड़ को पार कर चुका,
काम के काँटों को तोड़ दिया,
मोह का क्षय कर चुका,
और सुख दुःख से लिप्त नहीं होता,
वही सच्चा भिक्षु है" ॥२॥

* * *　　　* * *

§ ३—वग्गुमुदा नदी के तीर पर रहनेवाले भिक्षुओं की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **यशोज** पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान् का दर्शन करने के लिये **श्रावस्ती** आए हुए थे। आगन्तुक भिक्षु निवासीय भिक्षु के साथ मिलते जुलते, ठहरने के स्थान देखते, तथा पात्र चीवर सँभालते ऊँचे शब्द कर रहे थे।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! यह शोर-गुल कैसा—मानो मछुए मछली मार रहे हों ?"

भन्ते ! आयुष्मान् **यशोज** पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान् का दर्शन करने के लिए **श्रावस्ती** आए हुए हैं। आगन्तुक भिक्षु निवासीय भिक्षु के

साथ मिलते जुलते, ठहरने के स्थान देखते, तथा पात्र चीवर सँभालते ऊँचे शब्द कर रहे हैं।

आनन्द ! तो, मेरी ओर से उन भिक्षुओं को कहो—आयुष्मानों को बुद्ध बुला रहे हैं।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे, जहाँ वे भिक्षु थे, वहाँ गये और उनसे बोले, "आयुष्मानों को बुद्ध बुला रहे हैं"।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दे, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे उन भिक्षुओं को भगवान्‌ने कहा, "भिक्षुओ ! तुम इतने शोर-गुल क्यों कर रहे थे, मानो मछुये मछली मार रहे हों ?"

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् यशोज बोले, "भन्ते ! ये पाँच सौ भिक्षु भगवान् का दर्शन करने के लिए **श्रावस्ती** आए हुए हैं। आगन्तुक भिक्षु निवासीय भिक्षु के साथ मिलते जुलते, ठहरने के स्थान देखते, तथा पात्र-चीवर सँभालते ऊँचे शब्द कर रहे थे।

जाओ भिक्षुओ, मैं तुम्हें चले जाने को कहता हूँ (=पणमना); मेरे साथ तुम मत रहना।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ गए। और भगवान् का अभिवादन तथा उनकी प्रदक्षिणा कर, अपने आसन उठा, पात्र-चीवर ले **वज्जी** जनपद की ओर रमत (चारिका) के लिए चल पड़े। **वज्जी** जनपद में रमत करते क्रमशः, जहाँ **वग्गुमुदा** नदी है, वहाँ पहुँचे। **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर पत्तों की कुटी बना, वहाँ [१]वर्षावास के लिए ठहर गए।

---

[१] वर्षावास—देखो 'विनय पिटक', पृष्ठ १७१

वर्षावास रख लेने पर आयुष्मान् **यशोज** ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! हम लोगों के हितकामी और कृपालु भगवान् ने बड़ी अनुकम्पा कर के हम लोगों को चला दिया है, अब हम लोगों को वैसा रहना चाहिए जिससे भगवान् संतुष्ट हो जाएँ।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओंने आयुष्मान् को उत्तर दिया।

तब, वे भिक्षु अत्यन्त सचेत हो अपने क्लेशों को दबाते, बड़े संयम से रहने लगे। उसी वर्षावास में तीनों विद्या का साक्षात्कार कर लिया।

तब, भगवान् **श्रावस्ती** में यथेच्छ रह, **वैशाली** की ओर रमत (=चारिका) के लिए चल पड़े। रमत लगाते क्रमशः, जहाँ **वैशाली** है, वहाँ पहुँचे। वहाँ, वैशाली में भगवान् **महावन** में **कूटागारशाला** में विहार करते थे। वहाँ, भगवान् ने अपने चित्त से **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षुओं के विषय में सारी बात जान, आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! उस दिशा में मुझे आलोक उत्पन्न हो गया, प्रकाश उत्पन्न हो गया, जिस दिशा में **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षु विहार करते हैं। आनन्द ! **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षुओं के पास दूत भेजो—आयुष्मानों को बुद्ध बुला रहे हैं; बुद्ध आप लोगों से मिलना चाहते हैं।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** भगवान् को उत्तर दे, एक दूसरे भिक्षु के पास गए और बोले, "आवुस ! आप **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षुओं के पास जायँ और कहें—आयुष्मानों को बुद्ध बुला रहे हैं; बुद्ध आप लोग से मिलना चाहते हैं।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, वह भिक्षु आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दे—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे—**महावन** की **कूटागारशाला** में अन्तर्ध्यान हो वग्गुमुदा नदी के तीर पर उन भिक्षुओं के सामने प्रगट हुआ।

तब, वह भिक्षु **वग्गुमुदा** नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षुओं से बोला, "आयुष्मानों को बुद्ध बुला रहे हैं; बुद्ध आयुष्मानों से मिलना चाहते हैं।"

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु उस भिक्षु को उत्तर दे, अपने डेरा उठा, पात्र चीवर ले—जैसे कोई बलवान्०—**वग्गुमुदा** नदी के तीर पर अन्तर्ध्यान हो **महावन** की **कूटागारशाला** में भगवान् के सामने प्रगट हुए।

उस समय भगवान् चौथी समाधि में लीन होकर बैठे थे।

तब, उन भिक्षुओं के मन में ऐसा हुआ, "भगवान् इस समय किस ध्यान में हैं?" उन्होंने झट जान लिया, "भगवान् इस समय चौथे ध्यान में लीन हैं।" तब, सभी भिक्षु उसी ध्यान में लीन होकर बैठ गए।

आयुष्मान् **आनन्द**, रात के पहले याम के बीत जाने पर, आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात हो गई, पहला याम भी निकल गया; आगन्तुक भिक्षु बहुत समय से बैठे हैं; इन आगन्तुक भिक्षुओं से भगवान् कुशल क्षेम पूछें।"

आयुष्मान् **आनन्द** के ऐसा कहने पर भी भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार, बिचले याम के निकल जाने पर आयुष्मान् **आनन्द** आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात का दूसरा याम भी निकल गया; आगन्तुक भिक्षु बहुत समय से बैठे हैं; इन आगन्तुक भिक्षुओं से भगवान् कुशल क्षेम पूछें।

दूसरी बार भी भगवान् चुप रहे।

तीसरी बार, पिछले याम के भी निकल जानेपर आयुष्मान् **आनन्द** आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात का पिछला याम भी निकल गया, सूरज निकल चला; आगन्तुक भिक्षु बहुत समय से बैठे हैं; इन आगन्तुक भिक्षुओं से भगवान् कुशल क्षेम पूछें।"

तब, उस समाधि से उठ भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित

किया, "आनन्द ! यदि तुम जानते, तो अभी भी कुछ नहीं कहते। आनन्द ! मैं और ये सभी पाँच सौ भिक्षु चौथे ध्यान में लीन होकर बैठे थे।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसने काम रूपी कण्टक, क्रोध और हिंसा,
सभी को जीत लिया है,
वह पर्वत के ऐसा अचल रहता है,
उस भिक्षु को सुख दुःख नहीं सताते" ॥३॥

* * *　　　　* * *

§ ४—मोह का क्षय कर भिक्षु स्थिर और शान्त हो जाता है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **सारिपुत्र** भगवान् के निकट ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, स्मृतिमान् बैठे थे।

भगवान् ने आयुष्मान् **सारिपुत्र** को पास ही में उस तरह आसन लगाए, शरीर को सीधा किए स्मृतिमान् बैठे देखा।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जैसे कोई पर्वत की शिला
अचल होकर गड़ी रहती है,
वैसे ही, मोह का क्षय कर
भिक्षु स्थिर और शान्त रहता है" ॥४॥

* * *　　　　* * *

§ ५—मौद्‌गल्यायन की 'कायगता सति' भावना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **महा मौद्‌गल्यायन** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, 'कायगतासति'[१] में लीन हो बैठे थे।

भगवान् ने आयुष्मान् महा मौद्‌गल्यायन को पास ही में आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, 'कायगतासति' में लीन हो बैठे देखा।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

" 'कायगता सति' उपस्थित हो,
छः स्पर्शायतन संयत हों,
भिक्षु सदा ध्यान-मग्न रहे,
निर्वाण उसका अपना जानो" ॥५॥

* * * * * *

§ ६—पिलिन्दवच्छ का भिक्षुओं को 'चण्डाल' कहकर पुकारना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे।

उस समय, आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** भिक्षुओं को 'चण्डाल' कहकर पुकारा करते थे।

---

[१] अपने शरीर की ३२ गन्दगियों का मनन करना। देखो—महासति-पट्ठानसुत्त, दीघनिकाय

तब, कुछ भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** भिक्षुओं को 'चण्डाल' कहकर पुकारा करते हैं।"

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को बुला कर कहा, "जाओ, आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** को मेरी ओर से कहो—आवुस! बुद्ध आप को बुला रहे हैं।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** थे, वहाँ गया और बोला, "आवुस! बुद्ध आप को बुला रहे हैं।"

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** उस भिक्षु को उत्तर दे, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** को भगवान् ने कहा, "वच्छ! क्या यह सच बात है कि तुम भिक्षुओं को 'चण्डाल' कह कर पुकारते हो?"

हाँ भन्ते।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **पिलिन्दवच्छ** के पूर्व जन्मों पर विचार कर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ! तुम लोग **वच्छ** भिक्षु के कुछ कहने से बुरा मत मानो। **वच्छ** भिक्षु कोई द्वेष से तुम्हें 'त्रण्डाल' कहकर नहीं पुकारता है। भिक्षुओ! **वच्छ** भिक्षु पाँच सौ जन्मों से ब्राह्मण के कुल में जन्म ले रहा है, सो 'चण्डाल' शब्द इसकी जीभ पर बहुत चढ़ गया है। इसी से वह सदा भिक्षुओं को 'चण्डाल' कह कर पुकारा करता है।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसमें न माया (=छल) है, न अभिमान,
जो निर्लोभ, तथा स्वार्थ और तृष्णा से रहित है,
जो क्रोध से रहित, और शान्त हो गया है,
वही ब्राह्मण, वही श्रमण और वही भिक्षु है" ॥६॥

* * * * * *

§ ७—*महाकाश्यप को देवेन्द्र का पिण्ड-दान करना*

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **महाकाश्यप पिप्पलिगुहा** में विहार कर रहे थे। वे सप्ताह भर एक आसन पर समाधि लगाए बैठे थे। तब, उस सप्ताह के बीतने पर आयुष्मान् **महाकाश्यप** समाधि से उठे। समाधि से उठने पर आयुष्मान् **महाकाश्यप** के मन में ऐसा हुआ, "मैं राजगृह में पिंडाचरण (=भिक्षाटन) के लिये जाऊँ।"

उस समय पाँच सौ देवता आयुष्मान् **महाकाश्यप** को पिण्डपात देने के लिए उत्सुक हो खड़े हो गए।

आयुष्मान् **महाकाश्यप** उन देवताओं को छोड़ सुबह में, पहन, और पात्र-चीवर ले राजगृह में पिण्डाचरण के लिए पैठे।

उस समय, देवेन्द्र शक्र आयुष्मान् **महाकाश्यप** को पिण्डपात देने की इच्छा से तंतवे का रूप धर, ताना-बीना कर रहा था। असुर कन्या **सुजाता** नरी भर रही थी।

तब, आयुष्मान् **महाकाश्यप राजगृह** में एक ओर से पिण्डाचरण करते, जहाँ देवेन्द्र शक्र का घर था, वहाँ पहुँचे।

देवेन्द्र शक्र ने आयुष्मान् **महाकाश्यप** को दूर ही से आते देखा। देख कर अपने घर के भीतर गया, और हाँड़ी से भात निकाल पात्र भर कर पिण्डदान दिया। उस पिण्डपात में तरह तरह के व्यञ्जन और सूप थे।

तब, आयुष्मान् **महाकाश्यप** के मन में यह हुआ, "यह कौन है, जो इतना तेजस्वी मालुम होता है ?" आयुष्मान् **महाकाश्यप** झट जान गए, "अरे ! यह देवेन्द्र शक्र हैं।" यह जानकर उन ने देवेन्द्र शक्र को कहा, "शक्र ! जो कर चुका सो तो कर चुका, फिर कभी ऐसा मत करना।"

भन्ते ! **काश्यप** ! मैं भी पुण्य करना चाहता हूँ, मुझे भी पुण्य कमाने की इच्छा है।

तब, देवेन्द्र शक्र ने आयुष्मान् **महाकाश्यप** को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, आकाश के ऊपर उठ, वहाँ तीन बार उदान के ये शब्द कहे—अरे ! काश्यप को दिया गया यह दान कितने महत्त्व का है, ० कितने महत्त्व का है, ०कितने महत्त्व का है !!!

भगवान् ने अलौकिक विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से देवेन्द्र शक्र के ० उदान ० को सुना।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"पिण्डपात से अपना निर्वाह करने वाले,
किसी दूसरे को नहीं पोसने वाले,
शान्त और स्मृतिमान भिक्षु को देख,
देवताओं को भी स्पृहा हो जाती है" ॥७॥

*** ***

§ ८—या तो धार्मिक कथा या उत्तम मौन-भाव

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, **करेरी**[1] सम्मेलन-गृह में इकट्ठे होकर बैठे हुए कुछ भिक्षुओं के बीच यह बात चली :—"आवुस! पिण्डपातिक भिक्षु भिक्षाटन करते समय रह रह कर सुन्दर सुन्दर रूपों को देखा करता है, ० मधुर शब्दों को सुना करता है, ० सुगन्धों को सूँघा करता है, ० मधुर भोजन खाता है, ० मधुर स्पर्श करता है। आवुस! पिण्डपातिक भिक्षु भिक्षाटन करते समय लोगों से सत्कार=आदर=सम्मान, पूजा और प्रतिष्ठा पाता है। तो आवुस! हम लोग भी पिण्डपातिक होवें। हम लोग भी रह रह कर सुन्दर रूपों को देखा करेंगे, ० मधुर शब्दों को सुना करेंगे, ० सुगन्धों को सूँघा करेंगे, ० मधुर भोजन खाया करेंगे। मधुर स्पर्श किया करेंगे, हम लोग भी भिक्षाटन करके लोगों से सत्कार=आदर=सम्मान, पूजा और प्रतिष्ठा पायेंगे।" भिक्षुओं के बीच अभी यह बात चल ही रही थी।

तब, भगवान् साँझ को ध्यान से उठ, जहाँ **करेरी** सम्मेलन-गृह था, वहाँ गए, जाकर बिछे आसन पर बैठ गए। बैठकर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ! तुम लोग यहाँ बैठकर क्या बात कर रहे थे— किस बात में लगे थे?"

---

[1] "करेरी" वरुण वृक्ष का नाम है। वह वृक्ष गन्धकुटी के मण्डप के भीतर लगा था। इस लिये गन्धकुटी भी करेरी-कुटी कहा जाने लगा। मण्डप और शाला भी करेरी के नाम से प्रसिद्ध हो गये।" अट्ठकथा

भन्ते ! भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, **करेरी** सम्मेलन-गृह में इकट्ठे होकर बैठे हुए हम लोगों के बीच यह बात चली :—"आवुस ! पिण्डपातिक भिक्षु, भिक्षाटन करते समय, रह रह कर सुन्दर रूपों को० । तो आवुस ! हम लोग भी पिण्डपातिक ० ।" भन्ते ! हम लोग इसी बात में लगे थे कि भगवान् पधारे ।

भिक्षुओ ! श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए तुम कुलपुत्रों को ऐसी ऐसी बातों में पड़ना उचित नहीं । भिक्षुओ ! इकट्ठे होकर बैठने पर तुम्हें दो ही काम करने चाहिए, (१) या तो धार्मिक कथा, (२) या उत्तम मौन-भाव ।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"प्रशंसा और यश पाने की इच्छा के बिना
जो भिक्षु पिण्डपातिक होता है,
अपना निर्वाह करता है, दूसरों को नहीं पोसता,
देवता भी उसकी स्पृहा करते हैं" ।।८।।

* * * * * *

§ ९—या तो धार्मिक कथा या उत्तम मौन भाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे ।

उस समय, भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, **करेरी** सम्मेलन-गृह में इकट्ठे होकर बैठे हुए कुछ भिक्षुओं के बीच यह बात चली :—

"आवुस ! कौन शिल्प[1] जानता है ? किसने क्या शिल्प सीखा है ? कौन शिल्प सबसे अच्छा है ?"

कितनों ने कहा—हाथी ०, घोड़ा ०, रथ का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—धनुष का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—तलवार भाले का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—हस्तरेखा का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—गिनती करने का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—हिसाब लगाने का शिल्प (सङ्खान सिप्प[2]) सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—लिखा-पढ़ी का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—कविता करने का शिल्प सभी शिल्पों से अच्छा है।

कितनों ने कहा—झूठे तर्क करने का शिल्प ० अच्छा है।

कितनों ने कहा—खेत के नाप जोख करने तथा पहचानने का शिल्प० अच्छा है। उन भिक्षुओं में यह बात चल ही रही थी।

तब, भगवान् साँझ को समाधि से उठ ० भिक्षुओ ! किस बात में लगे थे ?

भन्ते ! भिक्षाटन से लौट ० हम लोगों में यह बात चल ही रही थी कि भगवान् पधारे।

भिक्षुओ ! श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए तुम कुलपुत्रों को

---

[1] शिल्प=जीविका चलाने के हुनर, जैसे बढ़ई का काम, लोहार का काम, घड़ीसाजी इत्यादि।

[2] सङ्खान शिल्प "जिसे यह शिल्प मालूम है वह वृक्ष को देख कर बता सकता है कि इसमें इतने पत्ते हैं।" (अट्ठकथा)

ऐसी ऐसी बातों में पड़ना उचित नहीं। भिक्षुओ! इकट्ठे हो कर बैठने पर तुम्हें दो ही काम करने चाहिये, (१) या तो धार्मिक कथा, (२) या उत्तम मौन-भाव।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"बिना शिल्प का जीने वाला, अल्पेच्छ,
यतेन्द्रिय, बिलकुल स्वच्छन्द,
बेघर का, स्वार्थ और तृष्णा से रहित,
मार को नष्ट भ्रष्ट कर भिक्षु अकेला चलता है" ॥६॥

* * *   * * *

§ १०—अनासक्ति ही मुक्ति-मार्ग है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **उरुवेला** में **नेरञ्जरा** नदी के तीर पर **बोधिवृक्ष** के नीचे अभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् एक ही आसन पर बैठे सप्ताह भर विमुक्ति-सुख का अनुभव कर रहे थे। तब, उस सप्ताह के बीतने पर भगवान् ने उस समाधि से उठ, बुद्ध-चक्षु से संसार को देखा। बुद्ध-चक्षु से संसार को देखते हुए भगवान् ने संसार के लोगों को अनेक संतापों से संतप्त होते, तथा राग, द्वेष, मोह की आग में जलते देखा।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"यह संसार संताप और पीड़ा से भरा है,
जो इसे अपनाता है वह दुःख ही दुःख (रोग) पाता है,

जिसे यह ज्ञान हो गया है वह संसार से अनासक्त रहता है,
उलटा समझने वाला[1] संसार में जन्म ले, यहीं लगा रहता है ।।
"जब उस भय को जान लेता है;
जिसे इस दुःख से डर हो जाता है,
तब, वह इस संसार[2] के प्रहाण के लिये
ब्रह्मचर्य पालन करने लगता है ।।

"जो श्रमण या ब्राह्मण संसार के भोगों को भोगकर ही शान्ति पाना बताते हैं, वे सभी संसार से मुक्त नहीं होते—ऐसा मैं कहता हूँ।

"जो श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मानते हैं कि मृत्यु के बाद ही संसार छूट जाता है, वे सब संसार में पड़े ही रहते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

"सारी उपाधियों (=पञ्चस्कन्ध) के मिट जाने से ही दुःख नहीं उत्पन्न होते; उपादान के क्षय हो जाने से ही दुःख नहीं होने पाते।

"इस बड़े संसार को देखो—अविद्या में पड़, संसार से लिप्त हो प्राणी मुक्त होने नहीं पाते।

संसार के सारे पदार्थ अनित्य, दुःख और विपरिणाम-धर्मा हैं" ।।१०।।

इस तरह, 'सत्य' को सच्ची प्रज्ञा से देखते हुए, भवतृष्णा और विभव-तृष्णा, दोनों को छोड़ देता है। तृष्णा को सर्वथा क्षय कर बिलकुल वैराग्य वाले निरोध निर्वाण को प्राप्त करता है। निर्वाण पाए भिक्षु का फिर जन्म नहीं होता, क्योंकि उसके उपादान मिट जाते हैं। मार हरा दिया गया, मैदान जीत लिया गया, संसार से सदा के लिए छूट गया।

---

[1] अञ्ञथाभावी=अन्यथाभवी=अज्ञानी ।

[2] भव =संसार में आवागमन

चौथा वर्ग

मेघिय वर्ग

§ १—आयुष्मान् मेघिय की कथा। पाँच बातों और चार धर्मों के अभ्यास का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **चालिका**[1] नगर में **चालिक**[1] नामक पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् **मेघिय** भगवान् की सेवा-टहल में लगे थे।

तब, आयुष्मान् **मेघिय**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गए। एक ओर खड़े हो, आयुष्मान् **मेघिय** भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं **जन्तु** गाँव में भिक्षाटन के लिए जाना चाहता हूँ।"

मेघिय ! यदि उचित समझते हो तो जाओ।

तब, आयुष्मान् **मेघिय** सुबह में, पहन, और पात्र चीवर ले **जन्तु गाँव** में भिक्षाटन के लिये पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, जहाँ **किमिकाला** नदी का तीर है, वहाँ गए। जाकर **किमिकाला** नदी के तीर पर इधर उधर घूमते हुए एक सुन्दर और रमणीय आम का बागीचा देखा। देखकर उनके मन में हुआ, "यह आम का बागीचा बड़ा सुन्दर है, बड़ा रमणीय

---

[1] नगर और पर्वत का ऐसा नाम क्यों पड़ा इसके लिये देखो अट्ठकथा।

है ! योग साधन करने वाले कुलपुत्र के लिए बड़ा अनुकूल स्थान है। यदि भगवान् मुझे अनुमति दे दें, तो मैं यहाँ आकर योगाभ्यास करूँ।"

तब, आयुष्मान् **मेघिय**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **मेघिय** ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! सुबह में, पहन, और पात्र चीवर ले, मैं **जन्तु गाँव** में भिक्षाटन के लिए गया था। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, जहाँ **किमिकाला** नदी का तीर है, वहाँ गया। जाकर, **किमिकाला** नदी के तीर पर इधर उधर घूमते हुए एक सुन्दर और रमणीय आम का बागीचा देखा। देखकर मेरे मन में हुआ, "यह आम का बागीचा बड़ा सुन्दर है, बड़ा रमणीय है ! योग-साधन करने वाले कुलपुत्र के लिए बड़ा अनुकूल स्थान है। यदि भगवान् मुझे अनुमति दे दें, तो मैं यहाँ आकर योगाभ्यास करूँ।" सो, भन्ते ! यदि भगवान् अनुमति दें तो मैं उस आम के बागीचे में जाकर अभ्यास करूँ।

ऐसा कहने पर भगवान् ने आयुष्मान् **मेघिय** को कहा, "**मेघिय** ! ठहरो, अभी मैं अकेला हूँ, किसी दूसरे भिक्षु को आ लेने दो।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् **मेघिय** ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! भगवान् को तो अब और कुछ करना बाकी नहीं रहा, किए हुए का क्षय करना है नहीं। भन्ते ! किंतु हम लोगों को तो अभी बहुत कुछ करना बाकी है, किये हुए का क्षय करना है। यदि भगवान् मुझे अनुमति दें तो मैं उस आम के बागीचे में जा कर अभ्यास करूँ।"

दूसरी बार भी, भगवान् ने आयुष्मान् **मेघिय** को कहा, "मेघिय ! ठहरो, अभी मैं अकेला हूँ, किसी दूसरे भिक्षु को आ लेने दो।"

तीसरी बार भी, आयुष्मान् **मेघिय** ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! भगवान् को तो अब और कुछ करना बाकी नहीं रहा ० यदि भगवान् मुझे अनुमति दें तो मैं उस आम के बागीचे में जाकर अभ्यास करूँ।"

मेघिय ! जो तू अभ्यास करना चाहता है तो, मैं क्या कह सकता हूँ ? यदि उचित समझते हो तो जाओ।

तब, आयुष्मान् **मेघिय** आसन से उठ भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, जहाँ वह आम का बागीचा था, वहाँ गए। आम के बागीचे में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठ गए। वहाँ विहार करते हुए आयुष्मान् **मेघिय** के मन में तीन पाप-वितर्क उठने लगे, जैसे (१) काम-वितर्क, (२) व्यापाद वितर्क, और (३) विहिंसा वितर्क।

तब, आयुष्मान् **मेघिय** के मन में हुआ, "बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्‌भुत है ! मैं श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ, सो ये तीन पाप-वितर्क मेरे चित्त में उठ रहे हैं, जो (१) काम-वितर्क, (२) व्यापाद-वितर्क और (३) विहिंसा-वितर्क।

तब, आयुष्मान् **मेघिय** साँझ को समाधि से उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **मेघिय** ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! उस आम के बागीचे में विहार करते समय मेरे चित्त में तीन पाप वितर्क उठने लगे०। इसपर, मेरे मन में हुआ, "बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्‌भुत है ! मैं श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ, सो ये तीन पाप-वितर्क मेरे चित्त में उठ रहे हैं ०।

मेघिय ! जिनका चित्त अभी वैराग्य में पूरा नहीं जमा है, उन्हें पाँच बातों का पूरा अभ्यास करना चाहिए—

१. मेघिय ! भिक्षु कल्याण-मित्रों के साथ रहता है, और सदा धर्म-सम्बन्धी बातें ही करता है : जिनका चित्त अभी वैराग्य में पूरा नहीं जमा है उन्हें इस पहली बात का अभ्यास करना चाहिए।

२. मेघिय ! फिर, भिक्षु शीलवान् होता है; प्रातिमोक्ष के संयमों का पालन करते हुए विहार करता है; सदाचारी होता है; छोटे से दोष से भी डरता रहता है; शिक्षापदों के अनुसार आचरण बनाता है। जिनका चित्त

अभी वैराग्य में पूरा नहीं जमा है, उन्हें इस दूसरी बात का अभ्यास करना चाहिए।

३. **मेघिय**! फिर, भिक्षु उन्हीं कथाओं को करता है, जो पापों को नाश करने वाली, चित्त को शुद्ध करने वाली, बिलकुल दुःखों का अन्त करने वाली, वैराग्य बढ़ाने वाली, निरोध करने वाली, परम शान्ति देने वाली, ज्ञान और बोध पैदा करने वाली तथा निर्वाण के पास ले जाने वाली हों—जैसे, अल्पेच्छ-कथा, संतुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा। सदा ऐसी ही कथाओं में अपना समय बिताता है। **मेघिय**! जिनका चित्त वैराग्य में अभी पूरा नहीं जमा है, उन्हें इस तीसरी बात का अभ्यास करना चाहिए।

४. **मेघिय**! फिर, भिक्षु उत्साह के साथ विहार करता है—पाप-धर्मों के प्रहाण के लिए, और पुण्य-धर्मों को अपनाने के लिए। पुण्य-धर्मों के पालन करने में जी जान से लगा रहता है। **मेघिय**! जिनका चित्त वैराग्य में अभी पूरा नहीं जमा है, उन्हें इस चौथी बात का अभ्यास करना चाहिए।

५. **मेघिय**! फिर, भिक्षु प्रज्ञावान् होता है। "(सभी संस्कार) उदय और अस्त होते रहते हैं," इस प्रज्ञा से युक्त होता है, जिससे सभी दुःखों का बिलकुल अन्त हो जाता है। **मेघिय**! जिनका चित्त वैराग्य में अभी पूरा नहीं जमा है उन्हें इस पाँचवीं बात का अभ्यास करना चाहिए।

मेघिय! कल्याण मित्रों के साथ रहने वाले भिक्षु को०. . . . . इन पाँच बातों का अभ्यास कर, उनमें प्रतिष्ठित हो, ऊपर के चार धर्मों का अभ्यास करना चाहिए—(१) राग के प्रहाण के लिए **अशुभ[1]-भावना** का अभ्यास करना चाहिए; (२) द्वेष के प्रहाण के लिए **मैत्री-**

---

[1] देखो दीघनिकाय—महासतिपट्ठान सुत्त

भावना का अभ्यास करना चाहिए; (३) बुरे वितर्कों को नाश करने के लिए **'अनापान सति'**[1] का अभ्यास करना चाहिए; (४) अहं-भाव को नाश करने के लिए **'संसार की अनित्यता'** की भावना करनी चाहिए। **मेघिय!** अनित्य-संज्ञा की भावना करने से अनात्म-भाव का साक्षात्कार हो जाता है। अनात्म-भाव का साक्षात्कार हो जाने से, अहं-भाव सर्वथा जाता रहता है—निर्वाण प्राप्त होता है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"मन में अनेक क्षुद्र और सूक्ष्म वितर्क उठते रहते हैं,
इन वितर्कों को न जान, लोक-परलोक में भ्रान्त-चित्त हो भटकता है।
इन वितर्कों को जान, ० आत्मसंयम कर स्मृतिमान् होता है;
बुद्ध मन में उठने वाले वितर्कों को बिलकुल छोड़ देते हैं" ॥१॥

*** ***

§ २—आलस्यहीन-भिक्षु सभी दुर्गतियों से छूट जाता है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **कुसिनारा** में **उपवत्तन** नामक मल्लों के शाल-वन में विहार करते थे।

उस समय, कुछ भिक्षु भगवान् के पास ही जंगल में कुटी बनाकर रहते थे। वे भिक्षु उद्धत, अभिमानी, चपल, बकवादी, गप्पी, मूढ़ स्मृति वाले, अज्ञानी, ध्यान भावना न करने वाले, भ्रान्त चित्त वाले, और अपने इन्द्रियों का संयम न करने वाले थे।

---

[1] अनापान सति—**आश्वास प्रश्वास पर चित्त स्थिर करना। देखो दीघनिकाय—महासतिपट्ठान सुत्त**

भगवान् ने उन भिक्षुओं को पास ही जंगल में कुटी बनाकर रहते देखा, जो उद्धत, अभिमानी, चपल, बकवादी, गप्पी, मूढ़स्मृति वाले, अज्ञानी, ध्यान भावना न करने वाले, भ्रान्त-चित्त वाले और अपनी इन्द्रियों का संयम न करने वाले थे।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"संयम-हीन, मिथ्या सिद्धान्त को मानने वाला,
और आलस्य-परायण, मार के वश में होजाता है।
आत्म-संयम करने वाला, अच्छे संकल्पों वाला,
सत्य को मानने वाला, (संस्कारों के) उदय और व्यय को जानने वाला,
आलस्यहीन भिक्षु सभी दुर्गतियों से छूट जाता है" ॥२॥

* * *   * * *

§ ३—ग्वाले को धर्मोपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ कोशल देश में रमत लगा रहे थे। तब, भगवान् रास्ते से उतर, एक वृक्ष के नीचे जाकर, बिछे आसन पर बैठ गए।

तब, एक ग्वाला, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ग्वाले को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, तथा उसके मन में उत्साह पैदा कर दिया।

तब, वह ग्वाला ० बोला, "भन्ते! भगवान् भिक्षु-संघ के साथ कल मेरे घर भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।"

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार किया।

वह ग्वाला भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर चला गया। उसने, उस रात के बीतने पर, अपने घर नया मक्खन और बहुत थोड़े पानी के साथ खीर तैयार कर, भगवान् को निमन्त्रण भेजा—भन्ते! समय हो गया, भोजन तैयार है।

तब, भगवान् सुबह में, पहन, और पात्र चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ, जहाँ उस ग्वाले का घर था, वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठ गए।

ग्वाले ने अपने हाथों से बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को नये मक्खन और बहुत थोड़े पानी के साथ तैयार की गई खीर परोस परोस कर खिलाया। भगवान् के भोजन कर लेने, और पात्र से हाथ खींच लेने के बाद, वह ग्वाला नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए उस ग्वाले को भगवान् धर्मोपदेश कर ० आसन से उठ चले गए।

भगवान् के चले जाने के बाद ही, उस ग्वाले को, किसी पुरुष ने सीमा को लेकर[१] लड़ाई झगड़ा हो जाने के कारण जान से मार दिया।

तब, कुछ भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! जिस ग्वाले ने आज अपने हाथों से बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को नये मक्खन और बहुत थोड़े पानी के साथ तैयार की गई खीर परोस

---

[१] सीमन्तरिकाय—"=गाँव की सीमा के भीतर ही। गाँव वाले एक तालाब के कारण इस ग्वाले से लड़ गए थे। ग्वाले ने लोगों को दबा कर तालाब पर दखल कर लिया था। इसी वैर से किसी पुरुष ने उस समय अवसर पा, तीर चला कर, उसे मार डाला।" (अट्ठकथा)

परोस कर खिलाया; उसे किसी पुरुष ने सीमा को लेकर लड़ाई झगड़ा हो जाने के कारण जान से मार दिया।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जितनी हानि शत्रु शत्रु की, और बैरी बैरी की करता है
झूठे मार्ग पर लगा चित्त उससे अधिक बुराई करता है[१]" ॥३॥

*** ***

§४–सारिपुत्र के शिर पर यक्ष का प्रहार देना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **सारिपुत्र** और **आयुष्मान् महामौद्गल्यायन कपोत कन्दरा**[२] में विहार करते थे। उस समय, उसी दिन शिर मुड़वाए आयुष्मान् **सारिपुत्र** शुक्ल-पक्ष की रात में खुले मैदान में समाधि लगाए बैठे थे। उस समय दो यक्ष मित्र किसी काम में उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की ओर जा रहे थे। उन यक्षों ने उसी दिन शिर मुड़वाए आयुष्मान् **सारिपुत्र** को शुक्ल-पक्ष की रात में खुले मैदान में बैठा देखा। देखकर, एक यक्ष ने

---

[१] धम्मपद में भी यह गाथा आई है। देखो ३।१०

[२] कपोतकन्दरा—"इस नाम के विहार में। उस पर्वत-कन्दरा में पहले बहुत कपोत रहा करते थे; इस लिये उसका नाम 'कपोत कन्दरा' पड़ गया था। उससे हटकर जो विहार बना था, उसका नाम भी 'कपोत-कन्दरा' प्रसिद्ध हो गया था।" (अट्ठकथा)

दूसरे यक्ष से कहा, "मित्र ! मेरी इच्छा हो रही है कि इस श्रमण के शिर पर एक प्रहार दूँ।"

उसके ऐसा कहने पर दूसरे यक्ष ने कहा, "मित्र ! रहने दो, इस श्रमण से मत लगो ! इस श्रमण का तेज और प्रताप बड़ा भारी है।"

दूसरी बार भी, पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा, "मित्र ! मेरी इच्छा हो रही है कि इस श्रमण के शिर पर एक प्रहार दूँ।"

दूसरी बार भी, दूसरे यक्ष ने पहले यक्ष से कहा, "मित्र ! रहने दो ! इस श्रमण से मत लगो। इस श्रमण का तेज और प्रताप बड़ा भारी है।"

तीसरी बार भी, पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा, "मित्र ! मेरी इच्छा हो रही है कि इस श्रमण के शिर पर एक प्रहार दूँ।"

तीसरी बार भी, दूसरे यक्ष ने पहले यक्ष को कहा, "मित्र ! रहने दो ! इस श्रमण से मत लगो। इस श्रमण का तेज और प्रताप बड़ा भारी है।"

तब, पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष के कहे हुए को न मान, आयुष्मान् **सारिपुत्र** के शिर पर एक प्रहार दिया। उस प्रहार से सात या आठ हाथ ऊँचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत-कूट भी चूर चूर हो जाता। सो वह यक्ष 'जल रहा हूँ, जल रहा हूँ' कहते वहीं से घोर नरक में गिर पड़ा।

आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** ने अपने अलौकिक दिव्य विशुद्ध चक्षु से उस यक्ष को आयुष्मान् **सारिपुत्र** के शिर पर प्रहार करते देखा। देखकर, जहाँ आयुष्मान् **सारिपुत्र** थे, वहाँ गये और उनसे बोले, "आवुस ! कुशल तो है ? कुछ कष्ट तो नहीं है ?"

आवुस **मौद्गल्यायन** ! बिलकुल कुशल है; हाँ, मेरे शिर में कुछ दर्द सा प्रतीत होता है।

आवुस **सारिपुत्र** ! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है ! आप आयुष्मान् **सारिपुत्र** का तेज और प्रताप बड़ा भारी है। आवुस **सारिपुत्र** ! किसी यक्ष ने आप के शिर पर एक प्रहार दिया था। वह प्रहार ऐसा कड़ा था कि उसके

पड़ने से सात या आठ हाथ ऊँचा हाथी भी गिर पड़ता, पर्वत कूट भी चूर चूर हो जाता।

तब, आयुष्मान् **सारिपुत्र** बोले, "मुझे बिलकुल कुशल है; हाँ मेरे शिर में कुछ दर्द सा प्रतीत हो रहा है।

आवुस **मौद्गल्यायन**! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है! आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** का तेज और प्रताप इतना बड़ा है कि यक्षों को भी देख लेते हैं, मैं तो अभी गुदड़ी लगाए किसी पिशाच को भी नहीं देखता।

भगवान् ने अपने अलौकिक विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से उन दो महानागों के इस कथा-संलाप को सुना।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसका चित्त शिला के ऐसा अचल रहता है,
राग उत्पन्न करने वाले विषयों में न अनुरक्त होता है,
और, क्रोध कराने वाले विषयों में क्रोध भी नहीं करता,
जो ध्यान लगाना जान चुका है
उसे क्यों कर दुःख हो सकता है" ॥४॥

* * * * * *

§ ५—पालिलेय्यक के रक्षितवन में भगवान् का एकान्तवास। हस्तिराज का उपस्थान

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **कौशाम्बी** में **घोषिताराम** में विहार कर रहे थे। उस समय, भगवान् के पास भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, राजा, मन्त्री, दूसरे मत वाले साधु तथा उनके श्रावकों की भीड़ लगी रहती थी—वे चैन भी करने नहीं पाते थे।

तब, भगवान् के मन में हुआ, "आज-कल मेरे पास ० भीड़ लगी रहती है—मैं चैन भी करने नहीं पाता। तो मैं इन्हें छोड़, जाकर कहीं एकान्त में रहूँ।" तब, भगवान् सुबह में, पहन, और पात्र चीवर ले **कौशाम्बी** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद स्वयं अपना आसन उठा, पात्र चीवर ले, अपने सेवक-भिक्षु को बिना कुछ कहे, भिक्षु संघ से बिना मिले, अकेले ही, जहाँ **पालिलेय्यक** है, उधर रमत (=चारिका) के लिए चल पड़े। रमत लगाते, क्रमशः जहाँ **पालिलेय्यक** है वहाँ पहुँचे। भगवान् **पालिलेय्यक** में **रक्षितवन** में **भद्रशाल** वृक्ष के नीचे विहार करने लगे।

एक महाहस्तिराज भी हाथी, हथनी, और कणेरु के बड़े झुण्ड के साथ विहार करते थे। उन्हें अपने बड़े परिवार से रौंदे गए तृण खाने को मिलते थे। उनकी तोड़ी हुई ऊँची ऊँची शाखाओं को सभी खा जाते थे। उन्हें गँदले पानी पीने को मिलते थे। जलाशय में उतरते समय हथिनियाँ उनके शरीर से रगड़ती उतरती थीं। इस झुण्ड में रहना उनको दुःखद हो गया था—उन्हें चैन करना भी नहीं मिलता था। उन हस्तिराज के मन में यह हुआ, " ० इस झुण्ड में रहना मुझे दुःखद हो गया है—मुझे चैन करना भी नहीं मिलता। तो मैं चलकर कहीं एकान्त में रहूँ।" सो, वे हस्तिराज झुण्ड को छोड़, **पालिलेय्यक** के **रक्षित वन** में **भद्रशाल** वृक्ष के नीचे, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए। जाकर, जहाँ भगवान् रहते थे, उस के आस पास जगह को साफ सुथरा करने लगे, सूँड़ से भगवान् के लिए जल और भोजन लाकर उनकी सेवा करने लगे।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में ऐसा वितर्क उठा, "पहले मेरे पास ० भीड़ लगी रहती थी, चैन करना भी नहीं मिलता था—इस समय मेरे पास कोई ० भीड़ नहीं है, मैं आनन्द और चैन के साथ रहता हूँ।"

हस्तिराज के मन में भी हुआ, "पहले ० झुण्ड में रहना मुझे दुःखद हो

गया था, चैन करना भी नहीं मिलता था—इस समय झुण्ड से अलग हो ० आनन्द और चैन के साथ रहता हूँ।

तब, भगवान् अपने और हस्तिराज, दोनों के वितर्क को जान, उदान के ये शब्द बोल उठे—

"वन में अकेला विहार करने वाले इस बड़े बड़े दाँत वाले[1]
हाथी का चित्त बुद्ध (=नाग=निष्पाप) के चित्त के समान ही है" ॥५॥

* * * * * *

§ ६—बुद्धों का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **पिण्डोल भारद्वाज** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए बैठे थे—जो बन-वासी (=आरण्यक), पिण्डपातिक, पांसुकूलिक, केवल तीन चीवर धारण करने वाले, अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकान्तप्रिय, लोगों से अधिक मिलने जुलने वाले नहीं, उत्साही धुताङ्ग व्रत पालन करने वाले तथा ध्यान का अभ्यास करने वाले थे।

भगवान् ने पास ही में आयुष्मान् **पिण्डोल भारद्वाज** को आसन लगाए, शरीर को सीधा किए देखा—जो वन-वासी, पिण्डपातिक ० थे।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"वाणी तथा शरीर से किसी को दुःख न देना,
प्रातिमोक्ष के संयमों को पालन करना,

---

[1] **ईसादन्तस्स—जिसके दाँत चक्के के आर के समान हैं।**

भोजन में हिसाब रखना,
वन में निवास करना,
योग से चित्त को शिक्षित करना,
यही बुद्धों का उपदेश है" ॥६॥

*** ***

§ ७—मुनि को शोक नहीं होते

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् **सारिपुत्र** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए बैठे थे—जो बड़े अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकान्तप्रिय, लोगों से अधिक मिलने जुलने वाले नहीं, उत्साही, और योगाभ्यास करने वाले थे।

भगवान् ने आयुष्मान् **सारिपुत्र** को पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किये बैठे देखा ०।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"प्रमाद-रहित चित्त वाले, तथा चुप रहने वाले मुनि को शोक नहीं होते, जो सदा स्मृतिमान् हो शान्त रहते हैं" ॥७॥

*** ***

§ ८—सुन्दरी परिव्राजिका की हत्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, लोग भगवान् का बड़ा सत्कार=आदर=सम्मान कर रहे थे। पूजित और प्रतिष्ठित हो उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, और ग्लान प्रत्यय बराबर प्राप्त होते थे। लोग भिक्षु-संघ का भी बड़ा सत्कार ०।

किंतु, दूसरे मत के साधुओं को कोई सत्कार=आदर=सम्मान नहीं करता था; उनकी पूजा-प्रतिष्ठा भी नहीं होती थी; उन्हें चीवर ० भी प्राप्त नहीं होते थे।

तब, दूसरे मत के साधु, भगवान् और भिक्षु-संघ के सत्कार को सह नहीं सकने के कारण, जहाँ **'सुन्दरी'** नाम की परिव्राजिका थी, वहाँ गये और बोले, "बहन! क्या हम बन्धुओं की कुछ भलाई कर सकती है?

भाई! मैं क्या करूँ? मैं क्या कर सकती हूँ? बन्धुओं की भलाई के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकती हूँ।

बहन! तो तुरत **जेतवन** चलो।

"भाई! बहुत अच्छा," कह **सुन्दरी** परिव्राजिका, उन दूसरे मत के साधुओं को उत्तर दे, तुरत **जेतवन** चली गई।

जब उन दूसरे मत के साधुओं ने जान लिया कि **'सुन्दरी'** परिव्राजिका उनका कहना मान, तुरत ही **जेतवन** के लिए प्रस्थान कर रही है, तब उसे (एकान्त में कहीं) जान से मार, **जेतवन** के पास ही एक गढ़े में उसके शरीर को छिपा दिया। तब, वे, जहाँ कोशल राज **प्रसेनजित** था, वहाँ गये और बोले, "महाराज! **सुन्दरी** परिव्राजिका नहीं दिखाई दे रही है।"

आप लोगों का संदेह कहाँ जाता है?

महाराज! **जेतवन** में।

तो जाकर **जेतवन** की तलाशी लें।

तब, उन ० लोगों ने **जेतवन** की तलाशी ले, उस गढ़े से (सुन्दरी परिव्राजिका के शरीर को) निकाल लिया। उसे बाँस के ठट्ठर पर उठा **श्रावस्ती** में प्रवेश किया; एक गली से दूसरी गली, एक चौराहे से दूसरे

चौराहे पर उसे ले जाकर मनुष्यों को भड़काया—भाई! बौद्ध भिक्षुओं (=शाक्यपुत्रों) की करतूत को देखो : ये बौद्ध भिक्षु निर्लज्ज हैं, दुःशील हैं, पापी हैं, झूठे हैं, व्यभिचारी हैं। लोग इन्हें बड़ा धर्मात्मा, संयमी, ब्रह्मचारी, सच्चे, शीलवान्, और पुण्यवान् समझे बैठे हैं। न तो इन में श्रमण-भाव है और न निष्पापता (=ब्राह्मण्य) : इनके श्रमण-भाव और इनकी निष्पापता सभी नष्ट हो चुके हैं। इनमें श्रमण-भाव कहाँ से! निष्पापता कहाँ से!! इन से श्रमण-भाव निकल गया है, निष्पापता निकल गई है। व्यभिचार करने के बाद, स्त्री को जान से मार डालना, उन्हें उचित नहीं था।

उस समय, **श्रावस्ती** में लोग भिक्षुओं को देखकर असभ्य और कड़े शब्दों से उन्हें दुत्कारते, धिक्कारते और गालियाँ देते थे—ये बौद्ध भिक्षु निर्लज्ज हैं ० व्यभिचार करने के बाद, स्त्री को जान से मार डालना, इन्हें उचित नहीं था!

तब, सुबह में कुछ भिक्षु, पहन, और पात्र चीवर ले **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! इस समय, **श्रावस्ती** में लोग भिक्षुओं को देखकर असभ्य और कड़े शब्दों से उन्हें दुत्कारते, धिक्कारते और गालियाँ देते हैं—ये बौद्ध-भिक्षु निर्लज्ज हैं ० व्यभिचार करने के बाद, स्त्री को, जान से मार डालना, इन्हें उचित नहीं था।

भिक्षुओ! यह बात बहुत दिनों तक नहीं रहेगी, केवल सप्ताह भर रह, उसके बाद बन्द हो जायगी। भिक्षुओ! जो भिक्षुओं को देख कर ० गालियाँ दें, उन्हें तुम इस गाथा (=श्लोक) से उत्तर दो—

"झूठ बोलने वाले नरक में पड़ते हैं,
और वे भी, जो कर के कहते हैं, 'हमने नहीं किया'

मृत्यु के बाद परलोक में जाकर;
दोनों नीच-काम-करने वालों की गति समान होती है" ॥

तब, वे भिक्षु भगवान् से यह गाथा सीख, जो भिक्षुओं को देखकर ० गालियाँ देते थे, उन्हें इसी गाथा को कहकर उत्तर देने लगे।

मनुष्यों के मन में यह हुआ, "इन बौद्ध भिक्षुओं ने ऐसा नहीं किया होगा, ये बराबर सौगन्ध खाते हैं!"

वह बात बहुत दिनों तक नहीं रही, केवल सप्ताह भर रह, उसके बाद बन्द हो गई।

तब, कुछ भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है! भगवान् ने ठीक ही कहा था, 'यह बात बहुत दिनों तक नहीं रहेगी, केवल सप्ताह भर रह, उसके बाद बन्द हो जायगी।' भन्ते! वह बात सचमुच में बन्द हो गई।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"अविनीत पुरुष दूसरों के कहने से भड़क ही जाते हैं,
जैसे संग्राम में पैठा हाथी वाण लगने पर।
कड़े वचन सुन, भिक्षुओं को सह लेना चाहिए,
अपने मन में बिना कोई द्वेष भाव लाए" ॥८॥

*** ***

§ ९—आयुष्मान् उपसेन के वितर्क

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय वंगन्तपुत्र आयुष्मान् **उपसेन** के चित्त में ऐसा वितर्क उठा, "अरे ! धन्य मेरा भाग्य ! ! मेरे गुरु स्वयं अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् हैं, इतने सुन्दर धर्मविनय में, मैं घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुआ हूँ, मेरे गुरुभाई भी सभी शीलवान् और पुण्यवान् हैं; मैं भी शीलों को पूरा पूरा पालता हूँ, ध्यान लगाया करता हूँ, मेरा चित्त एकाग्र हो गया है, मैं अर्हत् हो गया हूँ, मेरे आश्रव क्षीण हो गए हैं, मेरा तेज और प्रताप बड़ा भारी है; मेरा जीना और मरना दोनों सफल हो गया।

तब, वंगन्तपुत्र आयुष्मान् **उपसेन** के चित्त को अपने चित्त से जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो जीता रह अनुताप नहीं करता,
मृत्यु के आने से जिसे डर नहीं होता,
ज्ञान प्राप्त किया हुआ वह धीर पुरुष,
इस शोकाकुल संसार में शोक नहीं करता ।।
जिसकी भव-तृष्णा मिट गई है,
जिस भिक्षु का चित्त शान्त हो गया है,
उसका संसार में आना रुक जाता है,
उसका पुनर्जन्म नहीं होता" ।।९।।

* * *   * * *

§ १०—भव-तृष्णा मिट जाने से मुक्ति होती है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार कर रहे थे।

उस समय, आयुष्मान् **सारिपुत्र** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, अपने शान्त-भाव का मनन करते बैठे थे।

भगवान् ने आयुष्मान् **सारिपुत्र** को पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, अपने शान्त-भाव का मनन करते बैठा देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसका चित्त शान्त हो गया है,
 जिस भिक्षु की भव-तृष्णा[1] मिट गई है,
उसका संसार में आना रुक जाता है,
 मार (=मृत्यु) के बन्धन से वह मुक्त होजाता है" ॥१०॥

---

[1] **नेत्ति** "नेत्ति कहते हैं 'भव-तृष्णा' को" (अट्ठकथा)

पाँचवाँ वर्ग

सोन स्थविर का वर्ग

§ १—प्रसेनजित और मल्लिका देवी की बात-चीत ।

अपने से बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय कोशलराज **प्रसेनजित** (अपनी रानी) **मल्लिका देवी** के साथ प्रासाद के ऊपर वाले तल्ले पर गए थे। तब, कोशलराज **प्रसेनजित** ने **मल्लिका देवी** को कहा, "मल्लिके ! तुम्हें अपने से बढ़ कर प्यारा कोई दूसरा है ?"

नहीं, महाराज ! मुझे अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा नहीं है। महाराज ! क्या आप को अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा है ?

नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा नहीं है।

तब, कोशलराज **प्रसेनजित** प्रासाद से उतर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ! एक ओर बैठे हुए कोशलराज **प्रसेनजित** ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! मैं **मल्लिका देवी** के साथ प्रासाद के ऊपर वाले तल्ले पर गया था : वहाँ मैंने **मल्लिका देवी** से कहा—मल्लिके ! तुम्हें अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा है ?"

"मेरे ऐसा कहने पर **मल्लिका देवी** ने कहा—नहीं महाराज ! मुझे

अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा नहीं है। महाराज ! क्या आपको अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा है ?

"भन्ते ! **मल्लिका देवी** के यह पूछने पर मैंने उससे कहा—नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़कर प्यारा कोई दूसरा नहीं है।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"मन को सभी ओर दौड़ा,
अपने से अधिक प्यारा कोई नहीं मिलता।
दूसरों को भी अपना वैसा ही है,
तब, अपनी भलाई चाहने वाला दूसरों को न सतावे" ॥१॥

* * * * * *

§ २—*बोधिसत्व की माता*

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

तब, साँझ को आयुष्मान् **आनन्द** समाधि से उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है ! कि भगवान् की माता इतनी कम आयु तक ही जी सकीं; भगवान् के जन्म के एक सप्ताह बाद ही मर कर 'तुसितकाया' देवलोक में उत्पन्न हुईं।"

हाँ आनन्द ! बोधिसत्व की मातायें कम आयु तक ही जीती हैं; बोधिसत्व के जन्म के एक सप्ताह बाद ही मरकर 'तुसितकाया' देवलोक में उत्पन्न होती हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो हुए हैं और होंगे, सभी शरीर छोड़ कर
अवश्य मर जाएँगे।
पण्डित जन, इसे जान और सुन,
संयम से ब्रह्मचर्य पालन करें" ॥२॥

*** ***

§ ३—सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय, राजगृह में **सुप्रबुद्ध** नाम का एक कोढ़िया रहता था—महा दरिद्र, दुःखी और असहाय।

उस समय, भगवान् बड़ी भारी परिषद् के बीच बैठकर धर्मोपदेश कर रहे थे।

सुप्रबुद्ध ० ने दूर ही से उस बड़ी भीड़ को इकट्ठी होते देखा। देखकर उसके मन में हुआ, "अवश्य वहाँ कुछ खाने पीने की चीज बाँटी जाती होगी—तो मैं भी, जहाँ यह भीड़ इकट्ठी हो रही है, वहाँ चलूँ; तुरत ही मुझे भी कुछ खाने-पीने को चीज़ मिल जायगी।"

तब, **सुप्रबुद्ध** ०, जहाँ वह बड़ी भीड़ इकट्ठी थी, वहाँ गया। वहाँ, उसने भगवान् को बड़ी भारी परिषद् के बीच बैठकर धर्मोपदेश करते देखा। देखकर, उसके मन में यह हुआ, "अरे! यहाँ खाने पीने की कोई चीज नहीं बाँटी जा रही है। श्रमण गौतम लोगों को धर्मोपदेश कर रहे हैं। तो मैं भी धर्म सुनूँ।" सो वह वहीं पर एक किनारे बैठ रहा—मैं भी धर्म सुनूँगा।

तब, भगवान् ने सारी परिषद् को ध्यान से देखा—यहाँ धर्म समझने वाला सबसे योग्य व्यक्ति कौन है? भगवान् ने **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी को उस परिषद् में बैठे देखा। देखकर उनके मन में हुआ, "यहाँ धर्म समझने वाला सब से योग्य व्यक्ति यही है।" **सुप्रबुद्ध** ० को लक्ष्य कर के ही उन्हों ने आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा; शील-कथा; स्वर्ग-कथा; कामों में पड़ने की हानियाँ, उनकी बुराइयाँ, उनके पाप; और नैष्क्रम्य की प्रशंसायें।

जब भगवान् ने जान लिया कि **सुप्रबुद्ध** का चित्त स्वच्छ, मृदु, अनुकूल उत्साहित और श्रद्धालु हो गया है, तब बुद्धों का जो अपना उपदेश है, उस 'दुःख, समुदय, निरोध, और मार्ग' को समझाया।

जैसे शुद्ध स्वेत वस्त्र रंग को ठीक से पकड़ लेता है, वैसे ही **सुप्रबुद्ध** ० को उसी आसन पर रागरहित, निर्मल धर्म-ज्ञान उत्पन्न हो गया—"संसार में जो वस्तु उदय होती हैं, उनका लय भी अवश्य होता है।"

तब, **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी ने धर्म को देख लिया, धर्म को पा लिया, धर्म को जान लिया, धर्म के रहस्य को प्राप्त कर लिया। उसके सारे संदेह जाते रहे, उसकी सारी शंकायें मिट गईं। उसे पूरा विश्वास हो गया और बुद्ध-धर्म में अटल श्रद्धा हो गई।

वह आसन से उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी ने भगवान् से कहा, "भन्ते! आपने खूब समझाया! भन्ते! जैसे उल्टे को सीधा कर दे, ढके को खोल दे, भटके हुए को मार्ग बता दे, अंधकार में तेल का प्रदीप जला दे—आँख वाले चीज़ों को देख लें, वैसे ही अनेक प्रकार से भगवान् ने धर्मोपदेश किया। भन्ते! मैं भगवान् की शरण में जाता हूँ, धर्म की और भिक्षु-संघ की। आज से जन्म भर मुझे अपनी शरण में आया उपासक स्वीकार करें।

तब, **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी भगवान् के द्वारा धर्मोपदेश से दिखाया गया, बतलाया गया, उत्साहित और पुलकित किया गया, भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर चला गया। तब, **सुप्रबुद्ध** ० को नये साँड़ ने पटक कर जान से मार डाला।

तब, कुछ भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! भगवान् ने जिस **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी को धर्मोपदेश ० किया था वह मर गया। अब, उसकी क्या गति होगी?

भिक्षुओ! **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी पण्डित था, निर्वाण के मार्ग पर आ गया था। मेरे धर्मोपदेश को उसने सफल बनाया। भिक्षुओ! **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी संसार के तीन बन्धनों [१] को पारकर स्रोतापन्न[१] हो चुका, अब वह मार्ग-च्युत नहीं हो सकता, उसका निर्वाण पाना निश्चित है।

भगवान् के ऐसा कहने पर एक भिक्षु बोला, "भन्ते! क्या कारण था कि **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी इतना, दीन, हीन और असहाय था?"

भिक्षुओ! बहुत पहले **सुप्रबुद्ध** कोढ़ी इसी **राजगृह** में एक सेठ का लड़का था। बागीचे की ओर जाते हुए **'तगरशिखि'** प्रत्येक बुद्ध को, उसने देखा, जो नगर में भिक्षाटन करने जा रहे थे। देखकर उसके मन में आया, "कौन यह कोढ़ी जा रहा है!" सो वह थूक फेंककर चला गया। उस पाप कर्म के फल स्वरूप वह अनेक सौ, हज़ार, और लाख वर्षों तक नरक में पकता रहा। उसी पाप के फल से वह इस बार **राजगृह** में कोढ़ी, दीन, हीन और असहाय हुआ। बुद्ध के धर्मविनय को जान, उसे बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई—शील, विद्या, त्याग, प्रज्ञा सभी गुण उसमें आ गए। इस ० के

---

[१] **देखो—मिलिन्दप्रश्न, बोधिनी, पृष्ठ १८. १६.**

कारण वह मर कर तावतिंस देवलोक में उत्पन्न हुआ है। वहाँ वह दूसरे देवों से वर्ण और यश में बढ़ चढ़कर है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े:—

"ज्ञानी दुर्गुणों को छोड़ने का यत्न करे,
पण्डित जन जीते जी पापों को छोड़ दें" ।।३।।

* * * * * *

§ ४—मछली मारने वाले लड़कों को भगवान् का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय कुछ लड़के **श्रावस्ती** और **जेतवन** के बीच मछली मार रहे थे।

तब, भगवान् सुबह में, पहन, पात्र चीवर ले भिक्षाटन के लिए **श्रावस्ती** में पैठ रहे थे। भगवान् ने उन लड़कों को **श्रावस्ती** और **जेतवन** के बीच मछली मारते देखा। देखकर भगवान्, जहाँ वे लड़के थे, वहाँ गए और बोले, "लड़को! तुम दुःख से क्या डरते हो? क्या तुम्हें दुःख अप्रिय है?"

हाँ भन्ते! हम दुःख से बहुत डरते हैं, दुःख हमें अप्रिय है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"यदि तुम्हें दुःख अप्रिय है, तो पाप मत करो—प्रगट या छिपकर,
यदि पाप-कर्म करोगे या करते हो तो दुःख से मुक्ति नहीं
हो सकती, चाहे भाग कर कहीं भी जाओ" ।।४।।

* * * * * *

§ ५—भगवान् का प्रातिमोक्ष-उपदेश करना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **मृगारमाता** के **पूर्वाराम** प्रासाद में विहार करते थे। उस समय, उपोसथ के दिन भगवान् भिक्षु-संघ के बीच बैठे थे।

तब, रात का पहला याम निकल जाने पर, आयुष्मान् **आनन्द** आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात का पहला याम निकल गया। बहुत देर से भिक्षु-संघ बैठा है। भगवान् भिक्षु-संघ को प्रातिमोक्ष का उपदेश करें।"

(आनन्द के) ऐसा कहने पर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी, रात का बिचला याम निकल जाने पर, आयुष्मान् **आनन्द** अपने आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात का बिचला याम निकल गया। बहुत देर से भिक्षु-संघ बैठा है। भगवान् भिक्षु-संघ को प्रातिमोक्ष का उपदेश करें।"

दूसरी बार भी भगवान् चुप रहे।

तीसरी बार भी, रात का पिछला याम निकल जाने और सूरज उठ जाने पर आयुष्मान् **आनन्द** अपने आसन से उठ, चीवर को एक कंधे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! रात का पिछला याम निकल गया, सूरज भी उठ गया। बहुत देर से भिक्षु-संघ बैठा है। भगवान् भिक्षु-संघ को प्रातिमोक्ष का उपदेश करें।"

आनन्द! यह भिक्षु-परिषद् अशुद्ध है।

तब, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** अपने चित्त से भिक्षु-परिषद् की चारों ओर से जाँच करने लगे। आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** ने उस पुरुष

को देख लिया जो दु:शील, पापी, घृणित और नीच आचारों वाला, छिपकर दुराचार करने वाला, नकली साधु, व्यभिचारी, सदाचार का ढोंग करने वाला, बुरे हृदय वाला, मूर्ख, और बेकार था। वह भिक्षु-संघ के बीच बैठा था।

तब, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** अपने आसन से उठ, जहाँ वह भिक्षु बैठा था, वहाँ गए और बोले, "आवुस ! उठो, भगवान् ने तुम्हें देख लिया है, तुम भिक्षुओं के साथ नहीं रह सकते।"

इसपर वह पुरुष चुप रहा।

दूसरी बार भी, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** बोले, "आवुस ! उठो, भगवान् ने तुम्हें देख लिया है, तुम भिक्षुओं के साथ नहीं रह सकते।"

दूसरी बार भी, वह पुरुष चुप रहा।

तीसरी बार भी, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** बोल, "आवुस ! उठो, भगवान् ने तुम्हें देख लिया है, तुम भिक्षुओं के साथ नहीं रह सकते।"

तीसरी बार भी, वह पुरुष चुप रहा।

तब, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन** ने उस पुरुष की बाँह पकड़, उसे दरवाजे के बाहर निकाल दिया और किवाड़ बन्द कर बेड़ी लगा दी। तब, आयुष्मान् **महामौद्गल्यायन**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और बोले, "भन्ते ! मैंने उस पुरुष को निकाल दिया। अब परिषद् शुद्ध हो गई। भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ को प्रातिमोक्ष का उपदेश करें।"

मौद्गल्यायन ! बड़ी विचित्र बात है ! बाँह पकड़े जाने तक वह मोघ-पुरुष बैठा रहा। तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! अब, इसके बाद मैं उपोसथ नहीं करूँगा, प्रातिमोक्ष का उपदेश नहीं दूँगा। तुम लोग स्वयं उपोसथ कर लिया करना, स्वयं प्रातिमोक्ष का उपदेश दे लेना। भिक्षुओ ! यह बात सम्भव नहीं कि बुद्ध अशुद्ध परिषद् में उपोसथ करें और प्रातिमोक्ष का उपदेश दें।

"भिक्षुओ! महासमुद्र में आठ आश्चर्य और अद्भुत धर्म हैं, जिन्हें देख कर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं—

क. महासमुद्र के आठ गुण

१. भिक्षुओ! महासमुद्र अत्यन्त क्रमशः नीचा और गहरा होता गया है। ० यह महासमुद्र का पहला आश्चर्य और अद्भुत धर्म है जिसे देख देख-कर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

२. भिक्षुओ! फिर, महासमुद्र स्थिर स्वभाव वाला है; अपनी वेला का उल्लंघन नहीं करता। ० यह महासमुद्र का दूसरा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

३. भिक्षुओ! फिर, महासमुद्र अपने में कोई मृतक शरीर नहीं रहने देता। बीच में यदि कोई मृतक शरीर पड़ जाता है, तो समुद्र शीघ्र ही उसे किनारे लगाकर जमीन पर फेंक देता है। ० यह महासमुद्र का तीसरा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

४. भिक्षुओ! फिर, जितनी बड़ी बड़ी नदियाँ हैं—गङ्गा, यमुना, अचिरवती, मही—सभी महासमुद्र में गिरकर अपने पहले नाम और गोत्र को छोड़ देती हैं: सभी 'महासमुद्र' के ही नाम से जानी जाती हैं। ० महासमुद्र का यह चौथा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महा-समुद्र में रमण करते हैं।

५. भिक्षुओ! फिर, संसार में, जितनी नदियाँ हैं, सभी महासमुद्र में गिरती हैं—आकाश से धारायें भी गिरती हैं। इससे महासमुद्र की घटती बढ़ती कुछ नहीं होती। ० महासमुद्र का यह पाँचवाँ आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

६. भिक्षुओ! फिर, महासमुद्र का एक ही रस है—खारापन। ०

महासमुद्र का यह छठा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

७. भिक्षुओ ! फिर, महासमुद्र में अनेक रत्न भरे पड़े हैं। उसमें ये रत्न हैं, जैसे—मोती, मणि, वैलूर्य, शङ्ख, शिला, मूँगा, रजत, जातरूप, लोहिताङ्क, मसारगल्ल। ० महासमुद्र का यह सातवाँ आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

८. भिक्षुओ ! फिर, महासमुद्र में बड़े बड़े जीव रहते हैं। उसमें ये जीव रहते हैं, जैसे—तिमि, तिमिङ्गिल, तिमिरपिङ्गल, असुर, नाग, गन्धर्व। महासमुद्र में योजन भर लम्बे भी जीव हैं, दो, तीन, चार, पाँच योजन भर लम्बे भी जीव हैं। ० महासमुद्र का यह आठवाँ आश्चर्य और अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर असुर महासमुद्र में रमण करते हैं।

ख. बुद्ध-धर्म में महासमुद्र के आठ गुण

भिक्षुओ ! इसी प्रकार, इस धर्म विनय में आठ आश्चर्य और अद्भुत धर्म हैं जिन्हें देख देख कर भिक्षु इस धर्म विनय में रमण करते हैं। कौन से आठ ?

१. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र क्रमशः नीचा और गहरा होता गया है, वैसे ही इस धर्म विनय में शिक्षा, क्रिया, प्रतिपदा, सभी क्रमशः होते हैं। ० इस धर्म विनय का यह पहला आश्चर्य और अद्भुत धर्म है ०।

२. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र स्थिर स्वभाव वाला हो अपनी वेला का उल्लंघन नहीं करता, वैसे ही मैंने अपने श्रावकों को जिन शिक्षापदों का उपदेश किया है उनका वे प्राणों के निकल जाने पर भी उल्लंघन नहीं करते। ० इस धर्मविनय का यह दूसरा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है ०।

३. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र अपने में कोई मृतक शरीर नहीं रहने देता

०, वैसे ही जो पुरुष दु:शील है ० उसके साथ संघ नहीं रहता। ० इस धर्म-विनय का यह तीसरा आश्चर्य और अद्भुत धर्म है ०।

४. भिक्षुओ ! जैसे जितनी बड़ी बड़ी नदियाँ हैं ० सभी 'महासमुद्र' के नाम से ही जानी जाती हैं, वैसे ही—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र—चारों वर्ण के जो लोग इस धर्म विनय में घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते हैं, अपने पहले नाम और गोत्र को छोड़ सभी "बौद्ध-भिक्षु [१]" इस एक नाम से जाने जाते हैं। ० यह चौथा धर्म ०।

५. भिक्षुओ ! जैसे ० उससे महासमुद्र की कुछ घटती बढ़ती नहीं होती, वैसे ही चाहे जितने भिक्षु निर्वाण पालें निर्वाण वही रहता है। ० यह पाँचवाँ धर्म ०।

६. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र का खारापन एक ही रस, वैसे ही इस धर्म का केवल एक रस है—विमुक्ति-रस। ० यह छठा धर्म ०।

७. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र में अनेक रत्न भरे पड़े हैं, वैसे ही इस धर्म में अनेक रत्न भरे पड़े हैं, जैसे—चार स्मृति प्रस्थान, सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग।[२] ० यह सातवाँ धर्म ०।

८. भिक्षुओ ! जैसे महासमुद्र में बड़े बड़े जीव रहते हैं ० वैसे ही इस धर्म विनय में बड़े बड़े जीव रहते हैं। वे बड़े बड़े जीव ये हैं, जैसे—स्रोतापन्न, स्रोतापत्ति-फल की प्राप्ति के लिए मार्ग पर आरूढ़, सकृदागामी, सकृदागामी-फल की प्राप्ति के लिए मार्ग पर आरूढ़, अनागामी, अनागामी-फल की प्राप्ति के लिए मार्ग पर आरूढ़, अर्हत्, अर्हत्-फल की प्राप्ति के लिए मार्ग पर आरूढ़। ० यह आठवाँ धर्म ०।

---

[१] **श्रमण शाक्यपुत्र**

[२] **विशेष देखो मिलिन्दप्रश्न, बोधिनी, पृष्ठ १८. १६.**

भिक्षुओ! इस धर्म विनय में यही आठ आश्चर्य और अद्भुत धर्म हैं, जिन्हें देख देख कर भिक्षु इस धर्म विनय में रमण करते हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"छिपा हुआ (पाप) लगा रहता है,
खुला हुआ नहीं लगा रहता।
इसलिए, छिपे को खोल दो,
तब, वह नहीं लगा रहेगा" ॥५॥

* * * * * *

§ ६—सोण कोटिकर्ण की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **महाकात्यायन अवन्ती** में **कुररघर** नामक पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय **'सोण कोटिकर्ण'** नामक उपासक आयुष्मान् **महाकात्यायन** की सेवा-टहल किया करता था।

तब, उपासक **'सोणकोटिकर्ण'** को एकान्त में ध्यान करते समय मन में यह वितर्क उठा, "जैसे **आर्य महाकात्यायन** धर्मोपदेश करते हैं—घर दुआर में पड़े रह बिलकुल पूरा, शुद्ध, शङ्खलिखित[1] ब्रह्मचर्य का पालन करना सहज नहीं। तो मैं शिर दाढ़ी मुड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर प्रव्रजित हो जाऊँ।

---

[1] "धोए हुए शङ्ख के समान (शुद्ध)" (अट्ठकथा) अथवा, 'शङ्ख' और 'लिखत' नाम के दो विख्यात तपस्वियों के समान।

तब, उपासक **सोणकोटिकर्ण,** जहाँ आयुष्मान् **महाकात्यायन** थे, वहाँ गया और आयुष्मान् **महाकात्यायन** को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उपासक **'सोणकोटिकर्ण'** ने आयुष्मान् **महाकात्यायन** को कहा, "भन्ते ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा—० मैं प्रव्रजित हो जाऊँ। सो आर्य महाकात्यायन ! मुझे प्रव्रजित करें।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् **महाकात्यायन** ने उपासक **सोणकोटिकर्ण** को कहा, "सोण ! एक शाम भोजन कर जीवन भर ब्रह्मचर्य निभाना बड़ा दुष्कर है। सुनो, गृहस्थ रहते हुए ही तुम नियमपूर्वक धर्मानुकूल केवल एक शाम भोजन कर ब्रह्मचर्य निभाने का अभ्यास करो।

तब, उपासक **सोणकोटिकर्ण** को प्रव्रजित होने का, जो उत्साह था वह बिलकुल ढीला पड़ गया।

दूसरी बार भी उपासक **सोणकोटिकर्ण** को एकान्त में ध्यान करते समय मन में यह वितर्क उठा, " ० मैं प्रव्रजित हो जाऊँ।"

०. . . . . दूसरी बार भी उपासक **सोणकोटिकर्ण** को प्रव्रजित होने का जो उत्साह था वह बिलकुल ढीला पड़ गया।

तीसरी बार भी उपासक **सोणकोटिकर्ण** को एकान्त में ध्यान करते समय मन में यह वितर्क उठा, " ० मैं प्रव्रजित हो जाऊँ।"

० आर्य **महाकात्यायन !** मुझे प्रव्रजित करें।

तब, आयुष्मान् **महाकात्यायन** ने उपासक **सोणकोटिकर्ण** को प्रव्रजित किया।

उस समय **अवन्ति दक्षिणापथ** में बहुत कम भिक्षु रहते थे। तब, आयुष्मान् **महाकात्यायन** ने वर्षा के तीन मास बीत जाने पर बड़ी कठिनाई से जैसे तैसे दश भिक्षुओं को इकट्ठा कर, **आयुष्मान् सोण** का उप-सम्पदा-संस्कार किया।

तब, वर्षावास करने पर **आयुष्मान् सोण** को एकान्त में ध्यान करते

समय मन में यह वितर्क उठा, "मैंने **भगवान्** का दर्शन नहीं किया है, केवल सुना है कि वे ऐसे ऐसे हैं। यदि मेरे उपाध्याय अनुमति दें तो मैं जाकर अपनी आँखों ० भगवान् का दर्शन करूँ।

तब, साँझ में ध्यान से उठ आयुष्मान् **सोण**, जहाँ आयुष्मान् **महाकात्यायन** थे, वहाँ गए और आयुष्मान् **महाकात्यायन** को अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **सोण** ने आयुष्मान् **महाकात्यायन** को कहा, " ० यदि उपाध्याय अनुमति दें तो मैं उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन करने जाऊँ।"

बहुत अच्छा सोण! जाओ ० भगवान् का दर्शन कर आओ। सोण ०! भगवान् को देखोगे—सुन्दर, दर्शनीय, शान्तेन्द्रिय, शान्तमन वाले, उत्तम, समथ दमथ से युक्त, पहुँचे हुए, दान्त, संयमशील, यतेन्द्रिय, निष्पाप। देख कर, मेरी ओर से उनके चरणों पर शिर टेक कर प्रणाम करना और कुशल क्षेम पूछना—भन्ते! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् **महाकात्यायन** भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करते हैं ०।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह आयुष्मान् **सोण** आयुष्मान् **महाकात्यायन** के कहने का अनुमोदन कर, आसन से उठ खड़े हुए। आयुष्मान् **महाकात्यायन** को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, अपना आसन उठा, पात्र चीवर ले, जिधर **श्रावस्ती** है, उधर रमत के लिए चल पड़े। रमत लगाते हुए क्रमशः, जहाँ **श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में भगवान् विहार करते थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् का अभिवादन किया और एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे हुए, आयुष्मान् सोण ने भगवान् को कहा, ० भन्ते! मेरे उपाध्याय ० भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करते हैं ०।"

भिक्षु! कहो, कुशल तो है? रास्ते में बड़ी हैरानी तो नहीं हुई? भिक्षा मिलने में दिक्कत तो नहीं हुई?

भन्ते ! सब कुशल है। रास्ते में कोई हैरानी नहीं हुई। भिक्षा मिलने में भी कोई दिक्कत नहीं हुई।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! इस आगन्तुक भिक्षु को ठहरने का स्थान बता दो।"

तब, आयुष्मान् आनन्द के मन में हुआ, "भगवान् ने जो मुझे इस आगन्तुक भिक्षु के ठहरने का स्थान बताने को कहा है सो मालूम होता है भगवान् इसे उसी विहार में ठहराना चाहते हैं जिसमें अपने स्वयं वास करते हैं।" अतः आयुष्मान् **आनन्द** ने आयुष्मान् **सोण** को उसी विहार में ठहरने का स्थान बताया, जिसमें भगवान् स्वयं वास करते थे।

तब, भगवान् बहुत रात तक खुले मैदान में बैठे रहने के बाद, पैर धोकर विहार में पैठे। आयुष्मान् **सोण** भी ० विहार में पैठे।

तब, भगवान् ने रात के भिनसारे उठ, आयुष्मान् **सोण** को कहा, "भिक्षु ! कहो, तुमने धर्म को कैसे समझा है।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **सोण** भगवान् को उत्तर दे, सोलह अष्टकवर्गों को पूरा पूरा स्वर के साथ पढ़ गया।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **सोण** के ० स्वर के साथ पढ़ जाने पर उसका अनुमोदन किया, "शाबास ! भिक्षु, सोलह अष्टकवर्गों को तुमने अच्छा याद कर लिया है, उनका अच्छा धारण कर लिया है। तुम्हारे कहने का प्रकार बड़ा अच्छा है, खुला है, निर्दोष है, अर्थ को साफ साफ दिखा देने वाला है।

भिक्षु, तुम्हारी क्या आयु[१] है ?

भन्ते ! मेरी आयु एक वर्ष की है।

भिक्षु, तुमने इतनी देर क्यों की ?

भन्ते ! बहुत देर के बाद मैं सांसारिक काम गुणों का दोष समझ सका।

---

[१] **भिक्षुओं की आयु उपसम्पदाकाल से जोड़ी जाती है, जन्म से नहीं।**

गृहस्थ-जीवन झंझटों से भरा है, काम काज से छुट्टी नहीं मिलती, तरह तरह की रुकावटों से भरा है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"संसार के दोषों को देख, और परम पद निर्वाण को जान,
आर्य जन पाप में नहीं रमते, शुद्ध जन पाप में नहीं रमते" ॥६॥

* * * * * *

§ ७—आयुष्मान् कांक्षारेवत का आसन लगाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् के पास ही आयुष्मान् **कांक्षारेवत** आसन लगाए, अपने शरीर को सीधा किए, कांक्षाओं से शुद्ध हो गए अपने चित्त का अनुभव करते बैठे थे।

भगवान् ने पास ही में आयुष्मान् **कांक्षारेवत** को आसन लगाए, अपने शरीर को सीधा किए, कांक्षाओं से शुद्ध हो गए अपने चित्त का अनुभव करते देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"लोक या परलोक में, अपनी या परायी
(संसार सम्बन्धी) जितनी कांक्षायें हैं,
ध्यानी उन सभी को छोड़ देते हैं,
तपस्वी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं" ॥७॥

* * * * * *

§८—देवदत्त का आनन्द को संघ-भेद करने की सूचना देना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय, उपोसथ के दिन आयुष्मान् **आनन्द** सुबह ही में पहन और-पात्र चीवर ले भिक्षाटन के लिए **राजगृह** में पैठे।

देवदत्त ने आयुष्मान् **आनन्द** को **राजगृह** में भिक्षाटन करते देखा। देखकर वह जहाँ आयुष्मान् **आनन्द** थे, वहाँ गया और बोला, "आवुस **आनन्द**! अब से, मैं अपना उपोसथ-कर्म और संघ-कर्म भगवान् और भिक्षु-संघ के बिना ही स्वयं किया करूँगा।"

तब, आयुष्मान् **आनन्द राजगृह** में भिक्षाटन करके लौटे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को कहा—

"भन्ते! आज मैं सुबह में, पहन, और पात्र चीवर ले **राजगृह** में भिक्षाटन के लिए पैठा। **देवदत्त** ने मुझे राजगृह में भिक्षाटन करते देखा। देखकर, **देवदत्त**, जहाँ मैं था, वहाँ आया और बोला, "आवुस आनन्द! मैं अब से, अपना उपोसथ-कर्म और संघ-कर्म भगवान् और भिक्षु-संघ के बिना ही स्वयं किया करूँगा।" भन्ते! आज **देवदत्त** संघ फोड़ देगा, (अलग ही) उपोसथ-कर्म और संघ-कर्म करेगा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"सुकर है साधु पुरुषों को साधु काम करना,
साधु काम पापियों को करना दुष्कर है।

पाप-कर्म पापियों को करना सुकर है,
पाप-कर्म आर्य जनों को करना दुष्कर है" ॥८॥

* * *   * * *

§ ९—क्या करते हैं, स्वयं नहीं जानते

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ **कोशल** देश में रमत (=चारिका) लगा रहे थे।

उस समय, बहुत से लड़के दौड़ते और चिल्लाते भगवान् के पास आ रहे थे।

भगवान् ने उन लड़कों को दौड़ते और चिल्लाते अपने पास आते देखा।

देखकर, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"अपने को पण्डित समझने वाले मूर्ख,
मन भर मुँह फाड़ फाड़ कर
व्यर्थ की बातें बकते हैं;
क्या करते हैं, स्वयं नहीं जानते" ॥९॥

* * *   * * *

§ १०—आयुष्मान् चुल्लपन्थक का आसन लगाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् **चुल्लपन्थक** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए स्मृतिमान् हो बैठे थे।

भगवान् ने पास ही, आयुष्मान् **चुल्लपन्थक** को आसन लगाए, शरीर को सीधा किए स्मृतिमान् हो बैठे देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुंह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

> "स्थिर शरीर और स्थिर चित्त से खड़े, बैठे या सोये रह, जो भिक्षु अपनी स्मृति को बनाए रखता है, वह ऊँची से ऊँची अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है। ऊँची से ऊँची अवस्थाओं को प्राप्तकर, वह मृत्युराज की दृष्टि में नहीं आता" ॥१०॥

छठा वर्ग

जात्यन्ध वर्ग

§ १—मार का भगवान् से परिनिर्वाण पाने के लिए प्रार्थना करना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **वैशाली** में **महावन** वाली **कूटागारशाला** में विहार करते थे।

तब, सुबह में भगवान्, पहन, और पात्र चीवर ले **वैशाली** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! बिछावन को ले चलो। जहाँ **चापाल** चैत्य है वहाँ दिन में विहार करने के लिए जाऊँगा।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** भगवान् को उत्तर दे, बिछावन उठा, भगवान् के पीछे पीछे हो लिए।

तब, भगवान्, जहाँ **चापाल** चैत्य है, वहाँ गए और बिछे आसन पर बैठ गए। बैठकर भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! **वैशाली** बड़ा रमणीय है, **उदेन चैत्य** रमणीय है, **गोतमक चैत्य** रमणीय है, **सप्ताम्र चैत्य** रमणीय है, **बहुपुत्र** चैत्य रमणीय है, **सारन्दद** चैत्य रमणीय है, **चापाल** चैत्य रमणीय है।

"आनन्द ! जिसे चारों ऋद्धि पाद भावित, अभ्यस्त, वश में, सिद्ध, अनुष्ठित, परिचित, और सधे सधाये रहते हैं, यदि वह चाहे तो कल्पभर या कल्प के अन्त तक रह सकता है। आनन्द ! बुद्ध को चारो ऋद्धिपाद भावित

अभ्यस्त, वश में, सिद्ध, अनुष्ठित, परिचित और सधे सधाये होते हैं; यदि बुद्ध चाहें, तो कल्प भर या बचे कल्प तक रह सकते हैं।"

आयुष्मान् आनन्द, भगवान् से इतने बड़े और साफ संकेत दिए जाने पर भी, नहीं समझ सके। भगवान् से ऐसी याचना नहीं की—भन्ते! भगवान् कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरें—संसार के हित के लिए, संसार के सुख के लिए, संसार पर अनुकम्पा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के अर्थ, हित और सुखके लिए। मानों, उनके चित्त में मार पैठ गया था।

दूसरी बार भी, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द! **वैशाली** बड़ा रमणीय है ०........। ० यदि बुद्ध चाहें तो कल्पभर या बचे कल्प तक रह सकते हैं॥"

इसपर भी, आयुष्मान् **आनन्द** ० मानो उनके चित्त में मार पैठ गया था।

तीसरी बार भी, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द! **वैशाली** बड़ा रमणीय है। ०.......। ०यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर या बचे कल्प तक रह सकते हैं।

इसपर भी, आयुष्मान् **आनन्द** ० मानो उनके चित्त में मार पैठ गया था।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द! जहाँ चाहो वहाँ जा सकते हो।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द,** भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ खड़े हुए, और भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर निकट ही में किसी वृक्ष के नीचे बैठ गए।

आयुष्मान् **आनन्द** के जाने के बाद ही, पापी मार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े होकर पापी मार ने भगवान् को कहा, "भन्ते! भगवान् परिनिर्वाण पावें, सुगत परिनिर्वाण

पावें। भन्ते ! भगवान् का परिनिर्वाण-काल प्राप्त हुआ है। भन्ते ! आप ने स्वयं यह बात कही थी, "हे मार ! मैं तब तक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करूँगा, जब तक मेरे श्रावक भिक्षु व्यक्त, विनीत, निःशङ्क, कुशल, विद्वान्, धर्मवान्, धर्म के ही अनुसार आचरण करने वाले, ठीक मार्ग पर चलने वाले न हो लेंगे—जब तक वे अपने उपाध्याय से धर्म सीखकर दूसरों को बताने, उपदेश करने, और समझाने बुझाने लायक नहीं हो लेंगे—और जब तक दूसरे मतों के कुतर्कों का खण्डन करने तथा प्रातिहार्य का निग्रह कर, धर्मोपदेश करने लायक नहीं हो जायँगे।"

भन्ते ! अब आपके श्रावक भिक्षु व्यक्त ० हो गए हैं। भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें, सुगत परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् का परिनिर्वाण-काल प्राप्त हो गया है।

भन्ते ! भगवान् ने यह बात कही थी, "हे मार ! मैं तब तक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करूँगा, जब तक मेरी श्रावक भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकायें सभी व्यक्त, विनीत ० लायक न हो लेंगी।

भन्ते ! अब, आपकी श्रावक भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकायें सभी व्यक्त, विनीत ० लायक हो गई हैं। भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें, सुगत परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् का परिनिर्वाण-काल प्राप्त हो गया है।

भन्ते ! भगवान् ने यह बात कही थी, "हे मार ! मैं तब तक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करूँगा जब तक मेरा ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत, विस्तृत, बहुज्ञ, और प्रसिद्ध हो, देवताओं, मनुष्यों में प्रगट न हो जायगा।

भन्ते ! अब, आप का ब्रह्मचर्य० मनुष्यों में प्रगट हो गया है। भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें, सुगत परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् का परिनिर्वाण-काल प्राप्त हो गया है।"

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने पापी मार को यह कहा, "रे पापी !

मत घबड़ा, भगवान् अब शीघ्र ही परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। आज से तीन महीने बीतने पर बुद्ध का परिनिर्वाण हो जायगा।

तब, भगवान् के **चापाल** चैत्य में, अपनी बची हुई अल्प आयु के विषय में कहने पर, अन्यत्त भयावह, रोमाञ्च कर देने वाला भूकम्प होने लगा–देव दुन्दुभी[1] गरजने लगी।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"आवागमन बनाये रखने वाले तुल्य और अतुल्य
सभी संस्कारों को मुनि (=बुद्ध) ने छोड़ दिया।
अध्यात्म में रत और समाहित हो,
आत्म-संभव[2] को कवच के ऐसा काट डाला"॥१॥

* * * * * *

§ २–शील, शुद्धता इत्यादि का पता लगाना।

कोशलराज को उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **मृगारमाता** के **पूर्वाराम** प्रासाद में विहार करते थे। उस समय, साँझ को समाधि से उठ, प्रासाद के सामने बाहर में भगवान् बैठे थे।

तब, **कोशलराज प्रसेनजित,** जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

---

[1] देवदुन्दभी—"**सूखा बादल गरजने लगा; बिना समय बिजली चमकने लगी;** हठात् वृष्टि होने लगी।" (अट्ठकथा)

[2] "**संसार में स्थिति बनाये रखने वाले भव-संस्कार को**" (अट्ठकथा)

उस समय सात जटाधारी साधु, सात निर्ग्रन्थ साधु,[१] सात नंगे साधु, सात एकवस्त्र-धारी साधु, और सात नख और काँख के बाल बढ़ाए परिव्राजक, अपने अनेक प्रकार के सामान लिए भगवान् के पास ही से जा रहे थे।

कोशलराज **प्रसेनजित** ने उन ० लोगों को पास ही से जाते देखा। देखकर आसन से उठ, उपरनी चादर को एक कंधे पर सम्हाल, दाहिने घुटने को पृथ्वी पर रख, उन साधुओं ० की ओर हाथ जोड़ कर तीन बार अपना नाम सुनाया, "भन्ते ! मैं कोशल-राज **प्रसेनजित** हूँ।"

तब, उन ० साधुओं के चले जाने के बाद कोशलराज **प्रसेनजित**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए कोशलराज **प्रसेनजित** ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! संसार में जो अर्हत् या अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़ हैं उनमें ये एक हैं।"

महाराज ! आप—गृहस्थ, कामभोगी, बाल बच्चों के साथ रहने वाले, काशी के चन्दन लगाने वाले, माला गन्ध और उबटन लगाने वाले, रुपये पैसे के फेर में पड़े रहने वाले—ने उलटा समझ लिया कि ये अर्हत् या अर्हत् मार्ग पर आरूढ़ हैं। महाराज ! किसी के साथ रहने से ही उसके शील का पता लगाया जा सकता है—सो भी, कुछ दिन नहीं, बहुत दिनों तक; बिना ध्यान से नहीं, किंतु ध्यान लगाकर; बिना बुद्धिमानी से नहीं, किंतु बड़ी बुद्धिमानी से। महाराज ! व्यवहार करने से ही किसी की शुद्धता का पता लगाया जा सकता है—सो भी, कुछ दिन नहीं ०। महाराज ! आपत्ति पड़ने पर स्थिरता का पता लगाया जाता है—सो भी, कुछ दिन नहीं ०। महाराज ! बात-चीत करने पर ही किसी की प्रज्ञा का पता लगाया जा सकता है—सो भी, कुछ दिन नहीं ०।

---

[१] जैन साधु

भन्ते! आप धन्य हैं! जो आपने इसे ऐसा अच्छा समझा दिया। मैं—गृहस्थ, कामभोगी ०—ने उलटा समझ लिया, कि ये अर्हत् या अर्हत-मार्ग पर आरूढ़ हैं। किसी के साथ रहने से ही उसके शील का पता लगाया जा सकता है, व्यवहार करने से ही किसी की शुद्धता का पता लगाया जा सकता है,— ० सो भी कुछ दिन नहीं ०। भन्ते! ये लोग गुप्तचर हैं, ढोंग बना बना कर यहाँ आते हैं। उनके पहले जाने के बाद पीछे पीछे मैं जाऊँगा। वे इस समय, भस्म भूत को हटा, नहा धो, लेप लगा, नाई से बाल दाढ़ी बनवा, उजले कपड़े पहन, पाँच काम-गुणों का भोग करेंगे।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"सभी तरह के काम करने को तैयार हो जाना नहीं चाहिए; दूसरे का गुलाम होकर नहीं रहना चाहिए; किसी दूसरे पर भरोसा कर के जीना उचित नहीं, धर्म के नाम पर व्यापार करने नहीं लगना चाहिए" ॥२॥

* * * * * *

§ ३—जो पहले था सो तब नहीं था

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् अपने सभी पाप अकुशल धर्मों के बिलकुल क्षीण हो जाने और अनेक कुशल (=पुण्य) धर्मों के पूरे हो जाने का अनुभव करते बैठे थे।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो पहले था, सो तब नहीं था,
जो पहले नहीं था, सो तब था;
न तो था और न अब होगा,
न इस समय वर्तमान है[१]" ॥३॥

***   ***

§ ४—जात्यन्ध पुरुषों को हाथी दिखाये जाने की कथा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

---

[१] "जो पहले था—**अर्हत्-मार्ग के ज्ञान की उत्पत्ति के पहले मेरी (चित्त) सन्तान में रागादि सभी क्लेश थे। इन क्लेशों में ऐसा कोई भी नहीं है जो पहले नहीं था।** तब नहीं था— **आर्यमार्ग के ज्ञान होने के समय वह क्लेश-समुदाय नहीं था।**........जो पहले नहीं था—**जो इस समय मेरा अपरिमाण अनवद्य (=निष्पाप) धर्म भावना से पूरा पूरा प्राप्त हो गया है, वह भी आर्यमार्ग के ज्ञान की उत्पत्ति के पहले नहीं था।** सो तब था—**जब आर्यमार्ग का ज्ञान उत्पन्न हो गया तब मेरा सारा अनवद्य धर्म था।**........न तो था और न अब होगा, न इस समय वर्तमान है—**जो वह अनवद्य-धर्म आर्यमार्ग मुझे बोधिवृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था, जिससे मेरा सारा क्लेश-समुदाय पूरा पूरा प्रहीण हो गया था, वह मुझे मार्ग के ज्ञान की उत्पत्ति के पहले नहीं था, अनागत में भी नहीं उत्पन्न होगा, और न इस वर्तमान समय में है, क्योंकि मुझे जो कुछ करना था, समाप्त हो गया।" (अट्ठकथा)**

उस समय, अनेक दूसरे मत के साधु, श्रमण, ब्राह्मण, और परिव्राजक, **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए घूमा करते थे—नाना सिद्धान्त मानने वाले, नाना विश्वास वाले, नाना रुचि वाले, नाना मिथ्या मतों से जकड़े हुए।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ऐसा मत मानते थे और यह कहते थे—लोक शाश्वत है : यही सत्य है, दूसरा बिलकुल झूठ।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ०—लोक अशाश्वत है : यही सत्य है, दूसरा बिलकुल झूठ।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ०—लोक शान्त है : यही सत्य है, दूसरा बिलकुल झूठ।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ०—लोक अनन्त है : यही सत्य है, दूसरा बिल-कुल झूठ।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ०—जो जीव है, वही शरीर है : यही सत्य है, दूसरा बिलकुल झूठ।

कुछ ०—जीव दूसरा है और शरीर दूसरा : ०

कुछ ०—मरने के बाद तथागत (आत्मा) बना रहता है :०

कुछ ०—मरने के बाद तथागत बना नहीं रहता :०

कुछ ०—मरने के बाद तथागत रहता भी है और नहीं भी :०

कुछ०—मरने के बाद तथागत न रहता है और न नहीं रहता है :०

इस तरह, वे आपस में लड़ते झगड़ते, विवाद करते, और एक दूसरे को मुख रूपी भाले से बेधते[1] हुए विहार करते थे—धर्म ऐसा है, ऐसा नहीं।[2]

---

[1] **मुखसत्तीहि वितुदन्ता=एक दूसरे को कठोर वचन कहते।**

[2] **इन भिन्न भिन्न मतों का विस्तार पूर्वक वर्णन और उनके दोष दीघ-निकाय के ब्रह्मजाल सूत्र में आते हैं।**

तब, कुछ भिक्षु सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले भिक्षाटन के लिए **श्रावस्ती** में पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर चुकने के बाद, वे भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! **श्रावस्ती** में अनेक दूसरे मत के साधु, श्रमण, ब्राह्मण, परिव्राजक भिक्षाटन के लिए घूमा करते हैं—नाना सिद्धान्त मानने वाले, नाना विश्वास वाले, नाना मिथ्या मतों से जकड़े हुए।

"कुछ श्रमण और ब्राह्मण ०।

"इस तरह, वे आपस में लड़ते झगड़ते, विवाद करते, और एक दूसरे को मुख रूपी भाले से बेधते हुए विहार करते हैं—धर्म ऐसा है, ऐसा नहीं।"

भिक्षुओ! ये साधु और परिव्राजक अन्धे, बिना आँख वाले अर्थानर्थ या धर्माधर्म को कुछ भी नहीं जानते हैं। अर्थानर्थ या धर्माधर्म को न जानने के कारण ही आपस में लड़ते, झगड़ते ० हैं।

अन्धों का हाथी देखना

भिक्षुओ! बहुत पहले, इसी **श्रावस्ती** में एक राजा रहता था। उस राजा ने किसी पुरुष को आमन्त्रित किया, "हे पुरुष! सुनो, **श्रावस्ती** में जितने जात्यन्ध (=जन्म से अन्धे) हैं सभी को एक जगह इकट्ठा करो।"

"देव! बहुत अच्छा" कह, वह पुरुष राजा को उत्तर दे **श्रावस्ती** में, जितने जात्यन्ध थे, सभी को बटोरकर राजा के पास ले आया और बोला, "देव! **श्रावस्ती** में जितने जात्यन्ध हैं सभी को मैंने इकट्ठा कर दिया।"

तो भणे! इन जात्यन्ध पुरुषों को हाथी दिखाओ।

"देव! बहुत अच्छा" कह, उस पुरुष ने राजा को उत्तर दे, उन जात्यन्ध पुरुषों को हाथी दिखाया—देखो, यह हाथी है।

कुछ जात्यन्धों ने हाथी के शिर को पकड़ा—हाथी ऐसा होता है।

कुछ जात्यन्धों ने हाथी के कान ०, दाँत ०, सूंड़ ०, शरीर ०, पैर ०, पीठ ०, पूंछ ०, बालधि (पूंछ का बाल) को पकड़ा—हाथी ऐसा होता है।

भिक्षुओ ! तब, वह पुरुष उन जात्यन्धों को इस तरह हाथी दिखाकर, जहाँ राजा था, वहाँ गया और बोला, "देव ! जात्यन्धों ने हाथी देख लिया। अब, आप की जैसी आज्ञा।"

भिक्षुओ ! तब, वह राजा, जहाँ वे जात्यन्ध थे, वहाँ गया और बोला, "सूरदास ! क्या हाथी देख लिया ?"

देव ! हाँ, हम लोगों ने हाथी देख लिया।

तो कहो, हाथी कैसा है ?

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के शिर को पकड़ा था उन ने कहा "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोई बड़ा घड़ा।"

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के कान को पकड़ा था उन्होंने कहा, "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोई सूप।"

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के दाँत को पकड़ा था, उन्होंने कहा, "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोई खूँटा।"

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के सूँड़ को पकड़ा था उन्होंने कहा, "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोई नङ्गलीस (?)।"

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के शरीर को पकड़ा था उन्होंने कहा, "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोट्ठ[1] (कोठी)।"

भिक्षुओ ! जिन जात्यन्धों ने हाथी के पैर पकड़े थे उन्होंने कहा, "देव ! हाथी ऐसा है—जैसे कोई ठूंठ।"

भिक्षुओ ! जिन ० पीठ ० "जैसे कोई ओखल।"

भिक्षुओ ! जिन ० पूँछ ० "जैसे कोई सोंटा।"

---

[1] कोट्ठो = "कुसूलो" अट्ठकथा

भिक्षुओ! जिन ० बालधि ० "जैसे कोई बढ़नी।"

इसपर, वे आपस में लड़ने भिड़ने लगे और मुक्का घुस्सा करने लगे—हाथी ऐसा है, वैसा नहीं; वैसा, ऐसा नहीं।

भिक्षुओ! इसे देख, राजा खूब हँसा।

भिक्षुओ! इसी तरह, ये साधु और परिव्राजक अंधे और बिना आँख वाले हो ० आपस में लड़ते, झगड़ते और एक दूसरे को मुख रूपी भाले से बेधते हैं—धर्म ऐसा है, वैसा नहीं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"कितने श्रमण और ब्राह्मण इसी में जूझे रहते हैं।
(धर्म के केवल) एक अङ्ग को देख आपस में विवाद करते हैं" ॥४॥

* * * * * *

§ ५—भिन्न-भिन्न मिथ्या सिद्धान्त

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, अनेक दूसरे मत के साधु, श्रमण, ब्राह्मण और परिव्राजक **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए घूमा करते थे—नाना सिद्धान्त मानने वाले, नाना विश्वास वाले, नाना रूचि वाले, नाना मिथ्या मतों से जकड़े हुए।

कुछ श्रमण और ब्राह्मण ० लोक और आत्मा अशाश्वत है ०, शाश्वत है ०, शाश्वत भी है और आशाश्वत भी ०, न तो शाश्वत है और न अशाश्वत, लोक और आत्मा अपने आप उत्पन्न हुए हैं ०, दूसरे (=ईश्वर) से उत्पन्न किए गए हैं ०, अपने आप भी उत्पन्न हुए हैं, और दूसरे से भी उत्पन्न किए गए हैं ०, न अपने आप उत्पन्न हुए हैं, और न किसी दूसरे से उत्पन्न

किए गए हैं किंतु यों ही हो गए हैं : सुख दुःख, आत्मा और लोक सभी शाश्वत हैं ०, अशाश्वत हैं ०, शाश्वत हैं और अशाश्वत भी ०, न शाश्वत हैं और न अशाश्वत ० : सुख दुःख, आत्मा और लोक सभी अपने आप उत्पन्न हुए हैं ०, दूसरे से उत्पन्न किए गए हैं ०, अपने आप उत्पन्न हुए हैं और दूसरे से भी उत्पन्न किए गए हैं ०, न अपने आप उत्पन्न हुए हैं और न दूसरे से उत्पन्न किए गए हैं ० ।

इस तरह, वे आपस में लड़ते ० धर्म ऐसा है, वैसा नहीं।

तब, कुछ भिक्षु (ऊपर के सूत्र के ऐसा) ० भगवान् से बोले, "भन्ते ! अनेक दूसरे मत के साधु ० आपस में लड़ते ०।"

भिक्षुओ ! ये साधु और परिव्राजक अन्धे, बिना आँख वाले अर्थानर्थ या धर्माधर्म को नहीं जानते। अर्थानर्थ या धर्माधर्म को न जानने के कारण ही आपस में लड़ते झगड़ते ० हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"कितने श्रमण और ब्राह्मण इसी में जूझे रहते हैं; बीच ही में नष्ट हो जाते हैं, बिना अज्ञान का नाश किए" ॥५॥

* * *　　　　* * *

§ ६—झूठे सिद्धान्त को लेकर झगड़ने वाले को मुक्ति नहीं

ऐसा मैंने सुना।

(बिलकुल ऊपर वाले सूत्र के समान)

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"संसार के अज्ञ जीव अहंकार और परंकार के भ्रम में पड़े रहते हैं। इसे लोग नहीं समझ पाते और न असल दुःख को जान सकते हैं। असल दुःख को समझ कर "मैं करता, और पराया करता" का भेद मिट जाता है।"

"संसार के अज्ञ जीव 'अहं-भाव' में पड़े हैं,
'अहं-भाव' की गाँठसे बेतरह जकड़े हैं,
झूठे सिद्धान्त लेकर झगड़ने वाला इस संसार से कभी नहीं छूटता" ॥६॥

* * *　　　* * *

§ ७—आयुष्मान् सुभूति का चार योगों के परे हो जाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **सुभूति** भगवान् के पास ही आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, अवितर्क समाधि लगाए बैठे थे।

भगवान् ने पास ही, आयुष्मान् **सुभूति** को ० समाधि लगाए बैठे देखा। इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसने अपने वितर्कों को भस्म कर दिया है[१] और अपने को पूरा पूरा पहचान लिया है, वह अरूप संज्ञी योगी सांसारिक आसक्ति (=सङ्ग[२]) को छोड़, चार योगों[३] के परे हो जाता है। उसका फिर भी संसार में जन्म नहीं होता" ॥७॥

* * *　　　* * *

---

[१] "कामवितर्क आदि सभी मिथ्या वितर्कों को आर्यमार्ग के ज्ञान से ....उच्छिन्न कर दिया है" (अट्ठकथा)

[२] "राग-सङ्ग......या क्लेश-सङ्ग.....का अतिक्रमण कर" (अट्ठकथा)

[३] चार योग—"कामयोग, भवयोग, (आत्म) दृष्टि-योग, और अविद्यायोग" (अट्ठकथा)

§ ८—गणिका के लिए झगड़ा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय, **राजगृह** में दो पक्ष के लोग एक गणिका (=पतुरिया) के प्रेम में बँध, आपस में लड़ते थे, झगड़ते थे, कलह करते थे, विवाद करते थे—एक दूसरे से हाथाबाँही भी करते थे, एक दूसरे पर ढेला पत्थर भी चलाते थे, एक दूसरे पर लाठी या हथियार से भी चढ़ जाते थे। वे कितने मर भी जाते थे; कितने घायल[1] भी होते थे।

तब, कुछ भिक्षु सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले, **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! **राजगृह** में दो पक्ष के लोग एक गणिका ० कितने घायल भी हो जाते हैं।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"प्राप्त काम-भोगों के सेवन करने में कोई दोष नहीं; संसार के रहते ही पुण्य-लाभ कर सकते हैं, पुण्य से ही संसार की वृद्धि होती है, इस लिए काम-भोगों को प्राप्त करना ही चाहिए—यह दोनों प्रकार की मिथ्या धारणा चित्त-मल से युक्त है। तृष्णा से आतुर, उसी में अनुरक्त प्रजा इसी को सार समझती है। यह है उन वर्जनीय अन्तों में से एक।

"ब्रह्मचर्य-जीवन के साथ व्रतों का पालन करना ही सार है—यह एक अन्त है। काम-भोगों के सेवन में कोई दोष नहीं—यह दूसरा अन्त है।

---

[1] **मरणमत्तम्पि दुक्खं निगच्छति=मरने के समान भी दुःख पाते थे।**

"इन दोनों प्रकार के अन्तों के सेवन से संस्कारों की वृद्धि होती है और उससे मिथ्या धारणा बढ़ती है। इन दो अन्तों को यथारूप नहीं देखने से, एक तो शान्त हो, उसी में फँस जाता है, और दूसरा मार्ग से बहक जाता है।

"जो इन दोनों बातों को ठीक ठीक जान लेते हैं, वे उनमें नहीं पड़ते। वे आवागमन में पड़ने वाले नहीं हैं" ॥८॥

*** ***

§ ९—जैसे पतंग प्रदीप में उड़-उड़ कर आ गिरते हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे। तेल-प्रदीप भी जल रहा था। उस समय, बहुत पतङ्ग उड़ उड़कर प्रदीप में आ गिरते थे। इससे वे जल जाते थे, मर जाते थे, जलमर जाते थे।

भगवान् ने उन पतङ्गों को ० जलमर जाते देखा।

इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"वे भटक जाते हैं, सार को नहीं पाते,
और भी नये नये बन्धन में पड़[1] जाते हैं।
जैसे पतङ्ग उड़ उड़कर प्रदीप में आ गिरते हैं,
वैसे ही, अज्ञ जन दृष्ट और श्रुत वस्तु में आसक्त होते हैं" ॥९॥

*** ***

---

[1] **बूहयन्ति=वर्धयन्ति=बढ़ाते हैं।**

§ १०—तभी तक खद्योत टिमटिमाते हैं जब तक सूरज नहीं उगता

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् **आनन्द**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! जब तक संसार में ० बुद्ध नहीं प्रगट होते तभी तक दूसरे मत के साधु लोगों से सत्कार=आदर=सम्मान पाते, और पूजित तथा प्रतिष्ठित हो, चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान-प्रत्यय पाते हैं। भन्ते ! जब संसार में ० बुद्ध उत्पन्न होते हैं, तो वे लोगों से न सत्कार=आदर=सम्मान पाते और न पूजित तथा प्रतिष्ठित हो चीवर ० पाते हैं।—भन्ते ! इस समय, भगवान् ही लोगों से ० ग्लान-प्रत्यय पाते हैं, और भिक्षु-संघ भी।

हाँ आनन्द ! जब तक संसार में बुद्ध नहीं जनमते ०। जब संसार में बुद्ध उत्पन्न होते हैं ०। इस समय बुद्ध ही ० ग्लान-प्रत्यय पाते हैं, और भिक्षु-संघ भी।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"तभी तक खद्योत (=भगजोगनी) टिमटिमाते हैं, जब तक सूरज नहीं उगता।

सूरज के उगते ही उनका टिमटिमाना बन्द हो जाता है, पता भी नहीं लगता है कि वे कहाँ गए।

इसी तरह, दूसरे मत के साधुओं का टिमटिमाना है।

जब तक सम्यक् सम्बुद्ध संसार में पैदा नहीं होते, तब तक तार्किक और श्रावक नहीं सुलझते और न अज्ञ लोग दुःख से मुक्त होते हैं" ॥१०॥

सातवाँ वर्ग

चूल वर्ग

§ १—आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय का आश्रवों से मुक्त होना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **सारिपुत्र** ने आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** को अनेक प्रकार से धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया, और पुलकित कर दिया।

तब, उस धर्मोपदेश से आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** का चित्त उपादान से रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गया।

तब, भगवान् ० ने आयुष्मान् **सारिपुत्र** के अनेक प्रकार से धर्मोपदेश कर दिखा दिए, बता दिए, उत्साहित कर दिए और पुलकित कर दिए जाने पर, आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** के चित्त को उपादान से रहित हो, आश्रवों से मुक्त होते देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"ऊपर, नीचे, और सभी ओर से मुक्त हो गया,

---

[१] यह मैं हूँ—"**जो इस प्रकार मुक्त हो गया है, वह रूप वेदना इत्यादि (पञ्च स्कन्धों) में 'यह धर्म मैं हूँ' ऐसी आत्म-दृष्टि..... से नहीं देखता।" (अट्ठकथा)**

'यह मैं हूँ'[1] इस भ्रम में नहीं पड़ता।
इस प्रकार मुक्त हो भव-सागर को पार कर जाता है,
जिसे पहले पार नहीं किया था; न उसमें फिर पड़ता है" ॥१॥

*** ***

§२—दुःखों का अन्त यही है, लकुण्टक भद्दिय को सारिपुत्र का उपदेश देना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **सारिपुत्र** ने आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** को शैक्ष्य समझ, अत्यन्त संतुष्ट हो, अनेक प्रकार से धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया और पुलकित कर दिया।

भगवान् ने आयुष्मान् **सारिपुत्र** को आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** को शैक्ष्य समझ अत्यन्त संतुष्ट हो ० अनेक प्रकार से धर्मोपदेश कर, दिखा देते, बता देते, उत्साहित कर देते और पुलकित कर देते देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"मार्ग कट गया, आशायें मिट गईं,
सूखी हुई धारा नहीं बहती है।
लता कट जाने पर और नहीं फैलती,
दुःखों का अन्त यही है" ॥२॥

*** ***

§ ३—श्रावस्ती के लोग कामासक्त रहते थे

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, **श्रावस्ती** के लोग (सांसारिक) काम-विषयों में अत्यन्त आसक्त=रक्त=लिप्त=ग्रथित=मूर्छित=डूबे=पड़े रहते थे।

तब, कुछ भिक्षु सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले **श्रावस्ती** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! **श्रावस्ती** के लोग काम विषयों में अत्यन्त आसक्त ० रहते हैं।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"कामों में आसक्त, कामों के सङ्ग में पड़े,
(दश) बंधनों[1] के दोष को नहीं देखने वाले,
बल्कि उन बंधनों में और भी लग्न रहने वाले
इस अपार भव-सागर को पार नहीं कर सकते"॥३॥

*** ***

§ ४—श्रावस्ती के लोग कामासक्त रहते थे

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

---

[1] दश संयोजन=बन्धन : देखो मिलिन्द-प्रश्न की बोधिनी।

उस समय, **श्रावस्ती** के लोग काम-विषयों में अत्यन्त आसक्त=रक्त=लिप्त=ग्रथित=मूर्छित=डूबे=अंधे बने पड़े रहते थे।

तब, भगवान् सुबह ही पहन और पात्र चीवर ले भिक्षाटन के लिए **श्रावस्ती** में पैठे। भगवान् ने **श्रावस्ती** के लोगों को काम-विषयों में अत्यन्त आसक्त ० पड़े देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"काम में अंधे, जाल में बझे, तृष्णा से अत्यन्त ढके, क्लेश-मार से बाँध लिए गए,—मछलियाँ जैसे बंसी में—जरामरण की ओर दौड़ते हैं, वत्स जैसे दूध के लिए माता के पास" ॥४॥

* * *   * * *

§ ५–लकुण्टक भद्दिय, एक ही अरा वाला रथ

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** कुछ भिक्षुओं के पीछे पीछे हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए।

भगवान् ने उन भिक्षुओं के पीछे पीछे आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** को दूर ही से आते देखा—दुर्वर्ण, उदास, मन मारे, मानो भिक्षुओं से तिरस्कृत। देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ! तुम उन भिक्षुओं के पीछे पीछे आयुष्मान् **लकुण्टक भद्दिय** को आते देखते हो—दुर्वर्ण, उदास, मन मारे, मानो भिक्षुओं से तिरस्कृत?"

हाँ, भन्ते!

भिक्षुओ! इस भिक्षु का तेज और प्रताप बड़ा भारी है। वे समापत्तियाँ

सुलभ नहीं हैं, जिन्हें इस भिक्षु ने न पा लिया हो। जिस लिए कुल-पुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के अन्तिम फल को इसने यहीं जानकर साक्षात् कर लिया है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"निर्दोष, शुद्ध, श्वेत आसन वाला,[1]
　　एक ही अरा वाला[2] रथ[3] आ रहा है।
इस निष्पाप को आते देखो,
　　जिसका स्रोत बन्द हो गया है, जो बन्धन से छूट गया है" ॥५॥

***　　　　***

§ ६—तृष्णा-संस्कार से मुक्त हो गए आयुष्मान् अज्ञातकोण्डञ्ञ

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् के पास ही आयुष्मान् **अज्ञातकोण्डण्य** आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, तृष्णा-संस्कार से मुक्त हो गए अपने चित्त का अनुभव करते बैठे थे।

भगवान् ने अपने पास ही आयुष्मान् **अज्ञातकोण्डण्य** को आसन

---

[1] "अर्हत्फल की विमुक्ति पाकर जो सुपरिशुद्ध हो गया है—इसी से 'शुद्ध श्वेत आसन वाला' कहा गया है।" (अट्ठकथा)

[2] "स्मृति रूपी एक ही अरा वाला।" (अट्ठकथा)

[3] "स्थविर को लक्ष्य कर के रथ कहा गया है।" (अट्ठकथा)

लगाए, शरीर को सीधा किए, तृष्णा-संस्कार से मुक्त हो गए अपने चित्त का अनुभव करते बैठे देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसके मूल में न पृथ्वी है,[1] और न जिसमें पत्ते[2] हैं,
ऐसी लता भला कहाँ से?
बन्धन से मुक्त[3] हो गए उस धीर पुरुष की
भला कौन निन्दा कर सकता है?
देवता लोग भी उसकी प्रशंसा किया करते हैं,
ब्रह्मा से भी वह प्रशंसित होता है" ॥६॥

* * * * * *

§ ७—महाकात्यायन की कायगता-सति भावना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् के पास ही आयुष्मान् **महाकात्यायन** आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, 'कायगता सति' की भावना में आत्म-चिन्तन करते बैठे थे।

---

[1] "आत्म-भाव रूपी वृक्ष की मूलभूत अविद्या, उसी की प्रतिष्ठा के लिए हेतुभूत आश्रव—नीवरण—मन की कमजोरियाँ रूपी पृथ्वी नहीं है।" (अट्ठकथा)

[2] "मान, अतिमान इत्यादि......" (अट्ठकथा)

[3] "सभी क्लेशादि संस्कार रूपी बन्धन से मुक्त" (अट्ठकथा)

भगवान् ने अपने पास ही, आयुष्मान् **महाकात्यायन** को आसन लगाए, शरीर को सीधा किए, 'कायगता सति' की भावना में आत्म-चिन्तन करते बैठे देखा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जिसे सदा 'कायगता सति' उपस्थित होवे,
जो अभी नहीं है वह मुझे नहीं होगा,
जो नहीं होगा सो मुझे नहीं होगा,
धर्म पर मनन करते विहार करने वाला वह,
भवसागर को थोड़े समय में तर जाता है" ॥७॥

* * * * * *

§ ८—थूण ग्राम के ब्राह्मणों की दुष्टता

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ मल्लों में रमत लगाते जहाँ **'थूण'** नाम मल्लों का ब्राह्मण-ग्राम है, वहाँ पहुँचे। **'थूण'** ग्राम में रहने वाले ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना, "श्रमण गौतम शाक्य-कुल से प्रव्रजित हो बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ मल्लों में रमत लगाते 'थूण' ग्राम में पहुँचे हुए हैं। यह सुन, कूँएँ को घास-भुस्सी से ऊपर तक भर दिया—ये मथमुण्डे नकली साधु पानी पीने न पावें।

तब, भगवान् रास्ते से उतर, जहाँ एक वृक्ष-मूल था वहाँ गए और बिछे आसन पर बैठ गए। बैठ कर, आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! जाओ, इस कूँएँ से पानी ले आओ।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को उत्तर दिया, "भन्ते ! अभी 'थूण' ग्राम के ब्राह्मणों ने कूँएँ को ऊपर तक घास-भुस्से से भर दिया है—ये मथमुण्डे नकली साधु पानी पीने न पावें।"

दूसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को ० ।

दूसरी बार भी आयुष्मान् **आनन्द** ने ० पानी पीने न पावें ।

तीसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! जाओ, उस कूँएँ से पानी ले आओ ।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** पात्र ले, जहाँ वह कूँआँ था, वहाँ गए । आयुष्मान् **आनन्द** के पहुँचते ही, कूँएँ से घास-भुस्सा उड़कर बाहर गिर गया, और मानो स्वच्छ, निर्मल जल के स्रोत से लबालब भर गया ।

तब, आयुष्मान् **आनन्द** के मन में यह हुआ, "अरे, बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है ! धन्य है बुद्ध का तेज और प्रताप ! ! मेरे पहुँचते ही कूँआँ ० लबालब भर गया।"

(आयुष्मान् **आनन्द**) पात्र से पानी ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और बोले, "भन्ते ! आश्चर्य है ० कूँआँ लबालब भर गया। 'भगवान् पानी पीवें, सुगत पानी पीवें ।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"कूँएँ से क्या करना है, यदि पानी सदा मिल जाय ?
तृष्णा को जड़ से काट, और किसकी खोज करे ?"॥८॥

*** ***

§ ९—राजा उदयन के अन्तःपुर में अग्निकाण्ड

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, भगवान् **कौशाम्बी** के **घोषिताराम** में विहार करते थे ।

उस समय, राजा **उदेन** के उद्यान में चले जाने पर उनके अन्तःपुर में आग लग गई, और **सामावती** के साथ पाँच सौ स्त्रियाँ जल मरीं ।

तब, कुछ भिक्षु सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले **कौशाम्बी** में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! राजा **उदेन** ० स्त्रियाँ जल मरीं। भन्ते! उन उपासिकाओं की क्या गति होगी?"

भिक्षुओ! उन उपासिकाओं में कुछ तो स्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी, और कुछ अनागामी थीं। भिक्षुओ! उन उपासिकाओं की मृत्यु निष्फल नहीं हुई है।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"मोह के बन्धन में पड़ा हुआ संसार,
ऊपर से देखने में बड़ा अच्छा मालूम होता है।
(संसारी) मूर्ख जन उपाधि के बन्धन में बँधे हैं,
और अन्धकार से सभी ओर घिरे पड़े हैं॥
समझते हैं—'यह सदा ही रहने वाला है'।
ज्ञानी पुरुष के लिए (रागादि) कुछ भी नहीं है"॥९॥

—————

आठवाँ वर्ग

पाटलिग्राम वर्ग

§ १—भगवान् का निर्वाण के विषय में उपदेश करना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् ने भिक्षुओं को निर्वाण सम्बन्धी धर्मदेशना देकर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया और पुलकित कर दिया। वे भिक्षु भी श्रद्धा-पूर्वक, ध्यान लगा, दत्तचित्त हो, कान लगाकर धर्म सुन रहे थे।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े:—

"भिक्षुओ! वह एक आयतन[1] है, जहाँ न तो पृथ्वी, न जल, न तेज, न वायु, न आकाशानञ्चायतन, न विज्ञानानञ्चायतन, न आकिञ्चन्यायतन, न नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है। वहाँ, न तो यह लोक है, न परलोक है और न चाँद-सूरज है। भिक्षुओ! न तो मैं उसे 'अगति' और न 'गति' कहता हूँ, न स्थिति और न च्युति कहता हूँ; उसे उत्पत्ति भी नहीं कहता हूँ। वह न तो कहीं ठहरा है, न प्रवर्तित होता है, और न उसका कोई आधार है। यही दुःखों का अन्त है" ॥१॥

*** ***

---

[1] **देखो 'प्राक्कथन'**

§ २—भगवान् का निर्वाण के विषय में उपदेश करना

ऐसा मैंने सुना।

(बिलकुल ऊपर के ऐसा)

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"अनात्म[1] का समझना कठिन है,
निर्वाण का समझना आसान नहीं।
ज्ञानी की तृष्णा नष्ट हो जाती है,
उसे (रागादि क्लेश) कुछ नहीं होते" ॥२॥

* * *　　　* * *

§ ३—भगवान् का निर्वाण के विषय में उपदेश करना

ऐसा मैंने सुना।

(बिलकुल ऊपर के ऐसा)

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"भिक्षुओ ! (निर्वाण) अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत है। भिक्षुओ ! यदि वह अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत नहीं होता तो जात, भूत, कृत,

---

[1] अनत्तं—'अनतं' और 'अनन्तं' भी पाठ मिलते हैं। 'अट्ठकथा' में दोनों के अर्थ 'निर्वाण' ही बताए गए हैं। मैं समझता हूँ "अनात्म" पाठ ही अधिक उपयुक्त है। आत्मदृष्टि के कारण ही लोग प्रश्न करते हैं कि "निर्वाण की क्या अवस्था है ?" अनात्म को समझ लेने से 'निर्वाण' का समझना बड़ा आसान हो जाता है।

और संस्कृत का व्युपशम नहीं हो सकता। भिक्षुओ, क्योंकि वह अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत है, इसीलिए जात, भूत, कृत, और संस्कृत का व्युपशम जाना जाता है" ॥३॥

* * *   * * *

§ ४—भगवान् का निर्वाण के विषय में उपदेश करना

ऐसा मैंने सुना।

(बिलकुल ऊपर के ऐसा)

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"(आत्म-दृष्टि में[1]) पड़े हुए ही का (चित्त) चलता है, नहीं पड़े हुए का चित्त नहीं चलता। (चित्त का) चलना नहीं होने से प्रश्रब्धि (=शान्त भाव) होती है। प्रश्रब्धि होने से राग नहीं उत्पन्न होते। राग नहीं होने से आवागमन नहीं होता। आवागमन नहीं होने से न मृत्यु और न जन्म होता है। न मृत्यु और न जन्म होने से, न यहाँ, न परलोक, और न उनके बीच में। यही दुःखों का अन्त है" ॥४॥

* * *   * * *

§ ५—भगवान् का चुन्द सोनार के यहाँ अन्तिम भोजन करना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ मल्लों में रमत

---

[1] जब "अहं-भाव" बना रहता है तो—यह मैं, यह मेरा, यह तू, यह तेरा, इत्यादि अनेक प्रकार से—चित्त प्रवर्तित होता है। "अहं-भाव" छूट जाने से चित्त की स्थिति ही नहीं हो सकती, प्रवर्तित कहाँ से होगी। "अहं-भाव" से रहित किसी चित्त की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

(=चारिका) लगाते, जहाँ **पावा** (ग्राम) है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् **पावा** में **चुन्द** नामक सोनार के आम्रवन में विहार करते थे।

चुन्द सोनार ने सुना, "भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ **मल्लों** में रमत लगाते, **पावा** में पहुँचे हैं और मेरे आम्रवन में विहार कर रहे हैं।"

तब, **चुन्द** ० जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए **चुन्द** ० को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया, और पुलकित कर दिया।

तब, **चुन्द** ने ० भगवान् को कहा, "भन्ते! भगवान् भिक्षु-संघ के साथ मेरे घर कल भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें"।

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब, **चुन्द** ० भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चला गया।

उस रात के बीतने पर, चुन्द० ने अपने घर 'सूकर-मद्दव[1]' और अनेक अच्छे भोजन तैयार करवा भगवान् को निमन्त्रण भेजा—भन्ते! समय हो गया, भोजन तैयार है।

---

[1] सूकर मद्दव—देखो दीघनिकाय 'महापरिनिर्वाण सूत्र' "सूकर मद्दव—'सूअर का मृदु मांस' ऐसा 'महाअट्ठकथा' में अर्थ किया गया है। दूसरों का कहना है कि सूकर-मद्दव 'सूअर का माँस' नहीं, किंतु सूअर से मर्दित वंसकलीर है। दूसरों का कहना है कि 'सूअर से मर्दित स्थान में उत्पन्न हुये छत्ते (=खुखड़ी)।' दूसरों का कहना है 'सूअर मद्दव' नाम का एक रसायन था—आज ही बुद्ध का परिनिर्वाण होगा, ऐसा सुन चुन्द ने भोजन में यह रसायन दे दिया था कि जिसमें भगवान् कुछ और जीवें।" 'अट्ठकथा'

तब, भगवान् सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले, भिक्षु-संघ के साथ जहाँ **चुन्द** ० का घर था, वहाँ गए और बिछे आसन पर बैठ गए। बैठकर भगवान् ने **चुन्द** ० को आमन्त्रित किया, "चुन्द ! जो तुमने सूकर-मद्दव तैयार किया है, उसे मुझे ही परोस, जो दूसरे भोजन हैं, उन्हें भिक्षु-संघ को दे।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, चुन्द ० ने भगवान् को उत्तर दे, जो सूकर-मद्दव ० था उसे भगवान् को ही परोसा, जो दूसरे भोजन ० थे उन्हें भिक्षु-संघ को दिया।

तब, भगवान् ने **चुन्द** ० को आमन्त्रित किया, "चुन्द ! जो बचा सूकर-मद्दव है, उसे फेंक आओ। चुन्द ! देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, श्रमण ब्राह्मण और मनुष्यों के साथ इस सारे लोक में किसी को नहीं देखता हूँ, जो उस सूकर-मद्दव को खाकर पचा ले—बुद्ध को छोड़।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह चुन्द ० भगवान् को उत्तर दे, जो बचा सूकर-मद्दव था, उसे गढ़े में फेंक आया और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए चुन्द ० को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया, और पुलकित कर दिया; फिर, आसन ले, उठ, चले गए।

तब, चुन्द सोनार के भोजन को खाकर भगवान् को कड़ी बीमारी उठी, खून के दस्त होने लगे, प्राणों को हर लेने वाली बड़ी वेदना होने लगी।

भगवान् उस वेदना को सचेत और स्मृतिमान् होकर सहने लगे। तब, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! जहाँ **कुसिनारा** है, वहाँ मैं जाऊँगा।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को उत्तर दिया।

चुन्द सोनार के भोजन को खाकर—ऐसा मैंने सुना प्राणों को हर लेने वाली कड़ी वेदना बुद्ध को उठी। सूकर-मद्दव को खाकर शास्ता (बुद्ध) को कड़ी बीमारी हो गई। दस्त पड़ते हुए ही भगवान् ने कहा—मैं **कुसिनारा** नगर जाऊँगा॥

तब, भगवान् रास्ते से उतर, जहाँ एक वृक्ष मूल था, वहाँ गए और आयुष्मान् **आनन्द** से बोले, "आनन्द! यहाँ आओ, संघाटी को चपोत कर बिछाओ, मैं बहुत थक गया हूँ, बैठूँगा।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को उत्तर दे, संघाटी को चपोत कर बिछा दिया।

भगवान् बिछे आसन पर बैठ गए। बैठकर, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया "आनन्द! जाओ, कहीं से पानी ले आओ, पीऊँगा; आनन्द, पीऊँगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् **आनन्द** ने भगवान् को कहा, "भन्ते! अभी तुरन्त ही पाँच सौ गाड़ियाँ पार हुई हैं, उनके चक्के से हिंड़ोरा कर पानी मैला और गदला बह रहा है। भन्ते! पास ही में **कुकुट्ठा** नदी बहती है; उसका जल स्वच्छ, शीतल, स्वास्थ्यकर, पवित्र है। वहाँ चलकर भगवान् पानी भी पीयें और गात्र को भी शीतल करें।"

दूसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द! जाओ, कहीं से पानी ले आओ, पीऊँगा; आनन्द, पीऊँगा।"

दूसरी बार भी, आयुष्मान् **आनन्द** ने कहा "भन्ते! ० वहाँ चलकर भगवान् पानी भी पीयें और गात्र को भी शीतल करें।"

तीसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द! ० पीऊँगा।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **आनन्द** भगवान् को उत्तर दे, पात्र ले, जहाँ वह नदी थी, वहाँ गए।

आयुष्मान् **आनन्द** के आते ही, वह हिंड़ोरायी, गदली, कदोर नदी स्वच्छ और निर्मल बहने लगी।

तब, आयुष्मान् **आनन्द** के मन में हुआ, "आश्चर्य है, अद्भुत है! बुद्ध का तेज और प्रताप!! मेरे आते ही यह हिंड़ोरायी, गदली, कदोर नदी स्वच्छ और निर्मल बहने लगी।

(आयुष्मान् आनन्द) पात्र में पानी ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और बोले, "भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है! ० निर्मल बहने लगी। भन्ते! भगवान् पानी पीवें, सुगत पानी पीवें।"

तब, भगवान् ने पानी पी लिया।

तब, भगवान् उस बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ जहाँ **कुकुट्ठा** नदी है, वहाँ गए। **कुकुट्ठा** नदी में पैठकर स्नान कुल्ला किया। फिर, नदी को लाँघ, जहाँ आम्रवन था, वहाँ गए। जाकर, आयुष्मान् चुन्दक को आमन्त्रित किया, "चुन्दक! यहाँ आओ, संघाटी को चपोत कर बिछाओ। चुन्दक! मैं बहुत थक गया हूँ, लेटूँगा।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् **चुन्दक** ने भगवान् को उत्तर दे, संघाटी को ० बिछा दिया।

तब, भगवान् दाहिनी करवट, पैर पर पैर रख, सिंह-शय्या लगाकर लेट गए—सचेत और स्मृतिमान् हो।

आयुष्मान् **चुन्दक** भी भगवान् के सामने बैठ गए।

स्वच्छ, स्वास्थ्य कर और प्रसन्न जल वाली कुकुट्ठा नदी के पास बुद्ध पहुँच कर,

इस संसार के अगुए, थके हुए शास्ता तथागत पैठे।

स्नान कुल्ला कर शास्ता भिक्षुओं के साथ पार उतरे,

शास्ता=प्रवक्ता=भगवान्=महर्षि उस आम्रवन में गए।

चुन्दक नामक भिक्षु को आमन्त्रित किया—चपोत कर बिछाओ
मैं लेटूँगा।

भगवान् की आज्ञा पा, चुन्दक ने शीघ्र ही चपोत कर बिछा
दिया।

थके हुये शास्ता लेट गये, चुन्द, भी वहीं सामने बैठ गया।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "कदाचित् **चुन्द** सोनार को यह पछतावा न हो "मेरा अलाभ हुआ, मेरा भाग्य बुरा हुआ, जो बुद्ध मेरा ही अन्तिम भोजन खाकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।"

"आनन्द! यदि **चुन्द** सोनार को ऐसा पछतावा हो, तो उसे समझा बुझा देना—आवुस चुन्द! तुम्हारा लाभ हुआ, तुम्हारा भाग्य जागा, कि बुद्ध तुम्हारे ही अन्तिम भोजन को खा कर निर्वाण को प्राप्त हुए। आवुस चुन्द! भगवान् के अपने मुख से सुनी हुई यह बात है—मेरे दो पिण्डपात समान फल और विपाक वाले हैं, जो दूसरे पिण्डपातों से अत्यन्त बढ़ चढ़ कर फल और पुण्य देने वाले हैं। कौन से दो? (१) जिस पिण्डपात को खाकर भगवान् ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की थी; और (२) जिस पिण्डपात को खाकर परम पद अनुपादानशेष निर्वाण को प्राप्त करते हैं। यही दो पिण्डपात समान ०।

"दीर्घजीवी चुन्द ० ने आयु देने वाला पुण्य कमया है; ० वर्ण देने वाला ०; ० सुख देने वाला ०; ०स्वर्ग देने वाला ०; ० यश देने वाला ०; ० ऐश्वर्य देने वाला ०।

"आनन्द! **चुन्द** सोनार के पछतावे को इस प्रकार हटा देना।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"दान देने से पुण्य बढ़ता है,
संयम करने से वैर बढ़ने नहीं पाता।
पुण्यवान् पाप को छोड़ देता है,
राग द्वेष मोह के क्षय होने से, परिनिर्वाण पाता है" ॥५॥

* * * * * *

§ ६—पाटलिपुत्र में भगवान्, गृहपतियों को शील का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ **मगध** में रमत लगाते जहाँ **पाटलिग्राम** है, वहाँ पहुँचे।

पाटलिग्राम के उपासकों ने सुना, "भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ **मगध** में रमत लगाते, पाटलिग्राम में पहुँचे हुए हैं।"

तब, **पाटलिग्राम** के उपासक, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए **पाटलिग्राम** के उपासकों ने भगवान् को कहा, "भन्ते! भगवान् कृपया हम लोगों के आवसथागार में चलने को स्वीकार करें।"

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार किया।

तब, **पाटलिग्राम** के उपासक भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ खड़े हुए और भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके आवसथागार चले गए। आवसथागार में चादर फर्श लगा, आसनों को बिछा, पानी की चाटी रख, प्रदीप जला, जहाँ भगवान् थे, वहाँ लौट आए और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर खड़े हो गए। एक ओर खड़े हुए **पाटलिग्राम** के उपासकों ने भगवान् को कहा, "भन्ते! आवसथागार में चादर फर्श लगा दिए गए हैं, आसन बिछा दिए गए हैं, पानी की चाटी रख दी गई है, प्रदीप जला दिया गया है। भगवान् अब जैसा उचित समझें।

तब, भगवान् सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले, भिक्षु-संघ के साथ, जहाँ आवसथागार था, वहाँ गए और पैर पखार, आवसथागार में पैठ, बिचले खम्भे के सहारे पूरब की ओर मुँह करके बैठ गए। भिक्षु-संघ भी पैर पखार, आवसथागार में पैठ, बिचली भित्ति के सहारे पूरब मुँह कर के बैठ गया—भगवान् को आगे किए। **पाटलिग्राम** के उपासक भी ० बाहरी भित्ती के सहारे भगवान् के सामने बैठ गए।

तब, भगवान् ने **पाटलिग्राम** के उपासकों को आमन्त्रित किया, "गृहपतियो ! शील को तोड़ दुःशील बनने के पाँच दोष हैं। कौन से पाँच ?

१. गृहपतियो ! शील को तोड़ दुःशील होने वाले की सम्पत्ति, अत्यन्त प्रमाद में पड़ जाने के कारण, घटने लगती है। शील को तोड़, दुःशील बनने का यह पहला दोष है।

२. गृहपतियो ! फिर, ० बड़ी बदनामी फैल जाती है। ० यह दूसरा दोष है।

३. गृहपतियो ! फिर ० वह जिस परिषद् में—चाहे क्षत्रियों की, या ब्राह्मणों की, या गृहपतियों की, या श्रमणों की—जाता है, अविशारद और मंकु हो कर जाता है। ० यह तीसरा दोष है।

४. गृहपतियो ! फिर, ० वह मरने के समय घबड़ा जाता है। ० यह चौथा दोष है।

५. गृहपतियो ! फिर, ० वह मरने के बाद नरक में पड़ कर दुर्गति को प्राप्त होता है।

गृहपतियो ! शील को तोड़, दुःशील बनने के यही पाँच दोष हैं।

गृहपतियो ! शीलवान् के शील पालन करने के पाँच उपकार होते हैं। कौन से पाँच ?

१. ० उसकी सम्पत्ति अप्रमत्त रहने से बढ़ती जाती है।०।

२. ० अच्छी ख्याति फैल जाती है।०।

३. ० वह जिस परिषद् में जाता है ० विशारद और अमंकु होकर जाता है।०।

४. ० वह मरने के समय, घबड़ा कर नहीं मरता।०।

५. ० वह मरने के बाद, स्वर्ग में जा सुगति पाता है।०।

गृहपतियो ! शीलवान् के शील पालन करने के यही पाँच उपकार होते हैं।

तब, भगवान् ने **पाटलिग्राम** के उपासकों को धर्मोपदेश कर दिखा दिया०। गृहपतियो ! रात चढ़ गई; अब बस रहे।

तब, **पाटलिग्राम** के उपासक आसन से उठ खड़े हुए और भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर चले गए।

तब, भगवान् **पाटलिग्राम** के उपासकों के चले जाने के बाद ही एकान्त कमरे में चले गए।

उस समय, **वज्जियों** के आक्रमण को रोकने के लिए मगधराज के महामन्त्री **सुनीध** और **वस्सकार पाटलिग्राम** में नगर उठवा रहे थे।

उस समय, हज़ारों देवता **पाटलिग्राम** में पैठ रहे थे। जिस प्रदेश में बड़े भारी भारी देवता पैठते थे, उस प्रदेश में बसने के लिए राजा के बड़े बड़े मन्त्री चाहने लगते थे। जिस प्रदेश में मध्यम देवता ० उस प्रदेश में बसने के लिए राजा के मध्यम मन्त्री चाहने लगते थे। जिस प्रदेश में नीच देवता ० उस प्रदेश में बसने के लिए राजा के नीचे पद के मन्त्री चाहने लगते थे।

भगवान् ने अलौकिक दिव्य विशुद्ध चक्षु से देखा कि हज़ारों देवता ० राजा के नीचे पद के मन्त्री चाहने लगते थे।

तब, उस रात के भिनसार को उठकर भगवान् ने आयुष्मान् **आनन्द** को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! **पाटलिग्राम** में कौन नगर उठवा रहा है ?" भन्ते ! **वज्जियों** के आक्रमण को रोकने के लिए मगधराज के महामन्त्री **सुनीध** और **वस्सकार पाटलिग्राम** में नगर उठवा रहे हैं।

आनन्द ! मानो तावतिंस देवों से मन्त्रणा कर के मगधराज के महामन्त्री सुनीध और **वस्सकार वज्जियों** के आक्रमण को रोकने के लिए **पाटलिग्राम** में नगर उठवा रहे हैं। आनन्द ! मैंने अलौकिक दिव्य विशुद्ध चक्षु से देखा कि हज़ारों देवता **पाटलिग्राम** में ०।

(तीन बार)

आनन्द ! आर्य पुरुषों और व्यापारियों के बसने से यह नगर वाणिज्य और व्यवसाय का बड़ा भारी केन्द्र हो जायगा। आनन्द ! **पाटलिपुत्र** में तीन अन्तराय (=विघ्न) लगे रहेंगे—(१) आग से, (२) पानी से और (३) आपस के कलह से।

तब, मगध महामन्त्री **सुनीध** और **वस्सकार,** जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए। जाकर उन्होंने भगवान् का सम्मोदन किया; कुशल समाचार पूछकर वे एक ओर खड़े हो गए। एक ओर खड़े हो, मगधमहामन्त्री सुनीध और वस्सकार ने भगवान् को कहा, "हे गौतम ! भिक्षु-संघ के साथ आज भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।"

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार किया।

भगवान् की स्वीकृति को जान, ० **सुनीध** और **वस्सकार,** जहाँ अपना घर था, वहाँ चले गए और अच्छे अच्छे भोजन तैयार करवा कर भगवान् को निमन्त्रण भेजे—हे गौतम ! समय हो गया, भोजन तैयार है।

तब, भगवान् सुबह ही, पहन, और पात्र चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ, जहाँ ० **सुनीध** और **वस्सकार** का घर था, वहाँ गए और बिछे आसन पर बैठ गए।

तब, ० **सुनीध** और **वस्सकार** ने अच्छे अच्छे भोजन अपने हाथों से परोस परोस कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को खिलाए। भगवान् के भोजन कर चुकने और पात्र से हाथ हटा लेने पर ० **सुनीध** और **वस्सकार** नीच आसन ले, एक ओर बैठ गए।

एक ओर बैठे हुए ० **सुनीध और वस्सकार** का भगवान् ने इन गाथाओं से अनुमोदन किया—

"जिस प्रदेश में पण्डित लोग घर बनाते हैं, वहाँ शीलवान्, ब्रह्मचारी और संयत पुरुषों को भोजन देते हैं; उसीसे वहाँ पर रहने वाले देवताओं को भी दक्षिणा मिल जाती है, वे पूजित हो उनकी पूजा हो जाती है, वे सम्मानित हो उनका सम्मान हो जाता है। इससे वे अनुकम्पा रखते हैं, जैसे माता अपने पुत्र पर। देवताओं की अनुकम्पा पाकर पुरुष सदा सकुशल रहता है।

तब, भगवान् **सुनीध** और **वस्सकार** का इन गाथाओं से अनुमोदन कर, आसन से उठ चले गए। उस समय, ० **सुनीध** और **वस्सकार** भी भगवान् के पीछे पीछे जाने लगे—आज श्रमण **गौतम** जिस द्वार से निकलेंगे उसका **"गौतम द्वार"** नाम पड़ेगा; जिस घाट से **गङ्गा** नदी पार करेंगे, उसका नाम **"गौतम-तीर्थ"** पड़ेगा।

तब, भगवान् जिस द्वार से निकले उसका **"गौतम-द्वार"** नाम पड़ा।

तब, भगवान्, जहाँ **गङ्गा** नदी है, वहाँ पहुँचे। उस समय **गङ्गा** नदी पूरी लबालब[1] भरी थी। इस पार से उस पार जाने के लिए कुछ मनुष्य नाव खोजने लगे, कुछ मनुष्य डोंगी खोजने लगे, कुछ मनुष्य बेड़ा बाँधने लगे।

तब, भगवान् भिक्षु-संघ के साथ—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले—इस पार अन्तर्ध्यान हो, उस पार प्रगट हो गए।

---

[1] "काकपेय्या" **एक और विशेषण है। "उसका भी अर्थ यही है कि नदी भरी थी—इतनी भरी थी कि एक काक भी किनारे बैठकर पानी पी सकता था।" (अट्ठकथा)**

भगवान् ने इस पार से उस पार जाने के लिए कुछ मनुष्यों को नाव, खोजते, कुछ मनुष्यों को डोंगी खोजते, और कुछ मनष्यों को बेड़ा बाँधते देखा। इसे देख, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"जो पुल बाँध[1] कर ऊपर ही ऊपर सागर[2] और नदी[3]
सभी को पार कर जाते हैं,
वे ज्ञानी जन तो पार कर चुके, लोग बेड़ा बाँधते
ही रह गए" ॥६॥

* * *   * * *

§ ७—आयुष्मान् नागसमाल का चोरों से पिटा जाना

ऐसा मैंने सुना।

उस समय, आयुष्मान् **नागसमाल** को पीछे पीछे लिए भगवान् **कोशल** देश में दीर्घ मार्ग पर जा रहे थे।

आयुष्मान् **नागसमाल** ने बीच में एक दो रास्ते को देखा; देखकर भगवान् से कहा, 'भन्ते! यह रास्ता है; हम लोग इसी पर चलें।"

ऐसा कहने पर, भगवान् ने आयुष्मान् **नागसमाल** को कहा, "नाग-समाल, यह रास्ता है, हम लोग इसपर आवें।"

० तीसरी बार भी आयुष्मान् **नागसमाल** ने भगवान् को कहा, "भन्ते! यह रास्ता है; हम लोग इसी पर चलें।"

तीसरी बार भी, भगवान् ने ० "हम लोग इसपर आवें।"

---

[1] **"आर्य-मार्ग रूपी पुल बाँधकर" (अट्ठकथा)**

[2] **"आर्य-संसार रूपी सागर" (अट्ठकथा)**

[3] **"आर्य-तृष्णा की नदी" (अट्ठकथा)**

तब, आयुष्मान् **नागसमाल** भगवान् के पात्र चीवर को वहीं ज़मीन पर फेंककर चले गए—भन्ते ! यह भगवान् का पात्र चीवर है।

तब, उस रास्ते पर जाते हुए, आयुष्मान् **नागसमाल** को बीच ही में चोरों ने पकड़ कर लात हाथ से खूब पीटा—पात्र को फोड़ दिया और संघाटी को फाड़ चीर दिया।

तब, आयुष्मान् **नागसमाल** अपने फूटे पात्र और फटी चुटी संघाटी को लिए, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आए और भगवान् का अभिवादन कर, एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् **नागसमाल** ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! उस रास्ते पर जाते हुए बीच ही में चोरों ने मुझे पकड़ कर लात हाथ से खूब पीटा, पात्र को फोड़ दिया, और संघाटी को फाड़ चीर दिया।"

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"पण्डित लोग मूर्ख पुरुषों के साथ हिलमिल कर
रहते और चलते हुए,
ज्ञान पूर्वक उनके पाप को छोड़ देते हैं, जैसे क्रौंच पक्षी
दूध पीकर पानी छोड़ देता है" ॥७॥

* * *   * * *

§ ८—*विशाखा के नाती मर जाने पर भगवान् का उपदेश करना*

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **मृगारमाता** के **पूर्वाराम** प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय, **विशाखा मृगारमाता** का बड़ा प्यारा नाती मर गया था।

तब, **विशाखा मृगारमाता** उसी दुपहरिये में भीगे कपड़े और भीगे बाल जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गई।

एक ओर बैठी हुई **विशाखा मृगारमाता** को भगवान् ने कहा, "अरे विशाखे! इस दुपहरिये में भीगे कपड़े और भीगे बाल तू यहाँ किस लिए आई है?"

भन्ते! मेरा बड़ा प्यारा नाती मर गया है; इसीलिए मैं इस दुपहरिये में भीगे कपड़े और भीगे बाल यहाँ आई हूँ।

विशाखे! **श्रावस्ती** में जितने, मनुष्य बसते हैं उतने नाती पोते लेना चाहेगी?

हाँ भन्ते! उतने नाती पोते लेना चाहूँगी।

विशाखे! **श्रावस्ती** में प्रति दिन कितने लोग मरते हैं?

भन्ते! **श्रावस्ती** में प्रतिदिन दश मनुष्य भी, नव मनुष्य भी, ० एक मनुष्य भी मरता है। भन्ते! किसी किसी दिन कोई भी नहीं मरता।

विशाखे! तो क्या समझती है—तब, तुम्हारे भीगे कपड़े और भीगे बाल कभी भी सूखने पायँगे?

भन्ते! ठीक कहते हैं, इतने नाती और पोते भारी जंजाल होंगे।

विशाखे! जिनको एक सौ प्यारे हैं, उनको एक सौ दुःख हैं; जिनको नब्बे प्यारे हैं, उनको नब्बे दुःख हैं; जिनको अस्सी प्यारे हैं, उनको अस्सी दुःख हैं; जिनको सत्तर प्यारे हैं, उनको सत्तर दुःख हैं; जिनको साठ प्यारे हैं उनको साठ दुःख हैं; ० जिनको दो प्यारे हैं, उनको दो दुःख हैं; जिनको एक प्यारा है, उनको एक ही दुःख है। और, **जिनको कोई प्यारा नहीं, उनको कोई दुःख भी नहीं।** राग से रहित रहने वाले को कोई शोक नहीं होता—कोई परेशानी उठानी नहीं पड़ती। ऐसा मैं कहता हूँ।

"शोक करना, रोना पीटना, तथा और भी संसार में होने वाले
अनेक प्रकार के दुःख,
प्यार करने से ही होते हैं; जो प्यार नहीं करता, उसे कोई दुःख
भी नहीं होते।
तब, संसार में जिन्हें कहीं भी प्यार नहीं लगा है, वे ही सुखी
और शोक-रहित होते हैं।
इसलिए, संसार में कहीं भी प्यार न बढ़ाते हुए, विरक्त
रहने का यत्न करना चाहिए" ॥८॥

* * * * * *

§ ९—आयुष्मान् दब्ब का परिनिर्वाण

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **राजगृह** के **वेलुवन** कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, **मल्लपुत्र** आयुष्मान् **दब्ब**, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए ० आयुष्मान् **दब्ब** भगवान् से बोले, "भगवन्! परिनिर्वाण करने का मेरा समय आ गया।"

दब्ब! जैसा ठीक समझो।

तब, ० आयुष्मान् **दब्ब** आसन से उठ खड़े हुए और भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर आकाश में उठ, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते हुए परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। आयुष्मान् **दब्ब** के आकाश में उठ, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते और धधकते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर न तो उनके भस्म का और न कोयले का पता लगा। जैसे घी या तेल के धधक कर जल जाने पर न तो उसके भस्म का और न कोयले का पता लगता है,

वैसे ही आयुष्मान् **दब्ब** के आकाश में उठ, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते और धधकते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर न तो उनके भस्म का और न कोयले का पता लगा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"शरीर छोड़ दिया, संज्ञा निरुद्ध हो गई,
सारी वेदनाओं को भी बिलकुल जला दिया।
संस्कार शान्त हो गए,
विज्ञान अस्त होगया ॥९॥"

*** ***

§ १०—आयुष्मान् दब्ब की निर्वाण गति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवन** आराम में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "हे भिक्षुओ!"

"भन्ते!" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले, "भिक्षुओ! ० जैसे घी या तेल के धधक कर जल जाने पर न तो उसके भस्म का और न कोयले का पता लगता है, वैसे ही आयुष्मान् **दब्ब** के आकाश में उठ, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते और धधकते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर न तो उसके भस्म का और न कोयले का पता लगा।

इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"लोहे के घन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियाँ उठती हैं, सो तुरत ही बुझ जाती हैं—कहाँ गईं कुछ पता नहीं चलता। इसी प्रकार, काम-बन्धन से मुक्त हो निर्वाण पाए हुए, तथा अचल सुख पाए हुए जन की गति का कोई भी पता नहीं लगा सकता" ॥१०॥

उदान समाप्त

नाम-अनुक्रमणी